।। ओ३म् ।।

वैदिक विवाहसंस्कार (हिंदी)

भीमाशंकर साखरे

सुरभारती प्रकाशन
सीताराम नगर, लातूर

कन्यादान

शिलारोहण

लाजाहोम

।। ओ३म् ।।
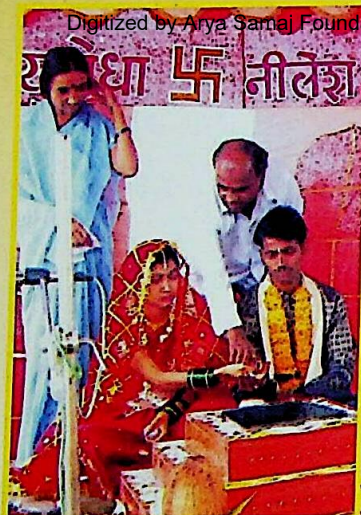
वैदिक विवाहसंस्कार

(हिंदी)

संपादक व अनुवादक

श्री भीमाशंकर चंदप्पा साखरे

सुरभारती प्रकाशन

सीताराम नगर, लातूर

वैदिक विवाहसंस्कार (हिंदी)

Vaidik Vivah Sanskar (Hindi)

संपादक व अनुवादक	:	**श्री. भीमाशंकर चंदप्पा साखरे** श्रीराम मंदिर के पास, मेन रोड, आळंद, जि. गुलबर्गा (कर्नाटक)-५८५३०२ भ्रमणध्वनि : ०९७४१०९५४६४
प्रकाशक व मुद्रितशोधक	:	**ज्ञानकुमार आर्य** सुरभारती प्रकाशन, प्रमोद गैस एजन्सी के पूर्व में , सीताराम नगर, लातूर (महाराष्ट्र)-४१३५३१ भ्रमणध्वनि : ९२२६५८९८७८
संस्करण	:	**प्रथम**
प्रतियाँ	:	**१०००**
प्रकाशन तिथि	:	**दि. २४/८/२०१० (श्रावणी उपाकर्म)**
शब्द-संयोजन	:	**वेदकुमार रघुनाथराव शिंदे** वेद पझेशन्स, सीताराम नगर, लातूर(महाराष्ट्र) भ्रमणध्वनि : ९९६०८६१५९२
मुखपृष्ठ व रचना	:	**सत्यजित आर्य** आर्य सुपर झेरॉक्स, सीताराम नगर, लातूर(महाराष्ट्र) - ४१३५३१ भ्रमणध्वनि : ९०२८३७६९६५
मुद्रक	:	**प्रिंट-पॅक बिझनेस फॉर्म्स प्रा.लि.** डी-१६, एम.आय.डी.सी. एरिया, लातूर(महाराष्ट्र) - ४१३५३१ दूरध्वनि : ०२३८२-२२०८५७
मूल्य	:	**१६ रु.**

अनुवादक की भूमिका

मैंने १९८३ में हिंदी में 'वैदिक विवाहसंस्कार की विशेषता' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। जिसमें केवल मंत्रों का भावार्थ था। तत्पश्चात् १९८५ में मेरे भतिजे चि. शशिकांत तथा श्रीकांत के विवाह के अवसर पर मराठी में 'वैदिक विवाहपद्धतीवर एक दृष्टिक्षेप' नामक लघु-पुस्तिका छपवाई। ये दोनों पुस्तकें उक्त अवसर पर निःशुल्क वितरित की थीं। इसके पीछे वैदिक विवाहसंस्कार का प्रचार, प्रसार तथा प्रभाव हो यही उद्देश था। संस्कार के समय पंडित, पुरोहित विधि से संबंधित संस्कृत मंत्रोच्चारण करते हैं। कभी-कभी समयाभाव के कारण विधि का विवेचन नहीं किया जाता। इससे वर-वधू तथा उपस्थितों को विधि का भावार्थ तथा हेतु स्पष्ट नहीं होता। इसलिए मैंने अक्तूबर, २००९ में मंत्रों के भावार्थ तथा विधियों के विवरण के साथ मराठी में 'वैदिक विवाहपद्धती' नामक पुस्तक छपवाई। इस पुस्तक की लोगों ने बहुत सराहना की।

अब इसी पुस्तक का यह हिंदी अनुवाद आपके हाथों में है। संस्कारों के भाव गूढ़ होते हैं। इसमें कोई भूल-चूक हो तो अवश्य सूचित करें। जो त्रुटियाँ हैं, वे मेरी अल्पबुद्धि के कारण हैं। जो भी उत्तम और ग्राह्य है, वह सब विद्वानों की कृपा का परिणाम है।

इसके लेखन में मेरे आत्मीय स्नेही श्री ज्ञानकुमार जी आर्य की प्रेरणा व सक्रिय मार्गदर्शन रहा है, जिसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इस ग्रंथ के प्रकाशन में जिन महानुभावों ने अपना सात्त्विक दान देकर सहयोग दिया है, उनका मैं अत्यंत ऋणी हूँ। उन्हीं के कारण यह आपको अल्प मूल्य में प्राप्त हो रहा है।

इसके पढ़ने से पाठकों को वेदोक्त उत्तम संस्कारों का व श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति का कुछ बोध हुआ तो मेरे परिश्रम कुछ अंशों में फलद्रूप हुए ऐसा मैं समझूँगा। आशा है कि पूर्व पुस्तकों के अनुसार इस पुस्तक को भी पाठक अपनाकर इसका स्वागत करेंगे।

दान की प्रेरणा

दान-प्रदात्री समाजसेविका माता श्रीमती शांतिदेवी मायर(लंदन) द्वारा 'स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल, परळी(वैद्यनाथ), जि.बीड(महाराष्ट्र)-४३१५१५' के लिए विविध भवनों के निर्माणार्थ रु.२८,५०,००० तथा विविध सेवाकार्यों के लिए स्थिरनिधियों के रूप में रु.२०,५०,०००(कुल रु. ४९,००,०००) की राशि प्राप्त हुई है। इस पुण्य कार्य के निमित्त उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए 'महाराष्ट्र आर्य प्रतितिधि सभा, वाजेगाँव(नांदेड), कार्यालय- आर्यसमाज परळी' की ओर से गुरुकुल में एक भव्य सत्कार-समारोह का आयोजन किया गया था। सौभाग्यवश उस समारोह में मैं भी उपस्थित था। माता शांतिदेवी जी के इस महान दातृत्व से प्रेरणा पाकर मैंने संकल्प कर लिया कि, मेरे द्वारा लिखित आर्य साहित्य के प्रकाशनार्थ मैं अपनी ओर से रु. ४९,००० की राशि दानरूप में लगवा दूँगा। जिससे अल्प मूल्य में लोगों को यह साहित्य प्राप्त हो सके। ईश्वर की असीम कृपा से विगत चार-पाँच वर्षों में अपने इस दृढ़ संकल्प को मैंने लगभग पूरा कर दिया है।

'सुरभारती प्रकाशन' की ओर से अब तक मेरी सात पुस्तकें (१५,००० प्रतियाँ) प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके प्रकाशनार्थ मैंने रु.४३,००० की दानराशि लगा दी है। अब मेरी दो पुस्तकें प्रकाशित होनी शेष हैं। उनके लिए भी मैंने रु. ६,००० की दानराशि सुरक्षित रख दी है। मेरी इस दानराशि के अतिरिक्त मेरे तथा श्री ज्ञानकुमार जी आर्य के महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के स्नेही जनों ने उक्त सात पुस्तकों के लिए रु. ६३,४२६ का अपना पवित्र दान देकर हमें उपकृत कर दिया है। उन सभी सुहृदों के हम बड़े कृतज्ञ हैं। इन दानदाताओं के नाम उस-उस पुस्तक में दिए गए हैं। शेष दो पुस्तकों के लिए भी सहयोग का आश्वासन मिल चुका है। मैं स्वतंत्रता सेनानी हूँ। फिर भी राज्य या केंद्र सरकार से किसी भी प्रकार का मानधन नहीं पाता हूँ। अलम् अति विस्तरेण।

दि.२५।१२।२००९

आपका विनम्र

भीमाशंकर साखरे (वैदिक पुरोहित)

प्रकाशकीय

अप्रैल, २००८ में हमने श्री साखरे जी की १) दैनिक पंचमहायज्ञविधि तथा २) नरशार्दूल पंडित नरेंद्र जी, ये दो पुस्तकें एक साथ प्रकाशित की थीं। अब फिर से उनकी दो पुस्तकें – 'वैदिक विवाहसंस्कार' तथा 'उपनयन, वेदारंभ और समावर्तनसंस्कार' – एक साथ प्रकाशित करने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है। उनकी ये पुस्तकें इससे पहले ही मराठी में निकल चुकी हैं। अब पाठकों तथा प्रियजनों की माँग होने से हम इन्हें हिंदी में प्रकाशित कर रहे हैं।

लेखन के बारे में श्री साखरे जी बड़े लगनशील व्यक्ति हैं। कलम और कागज से सदा चिपके रहते हैं। अपने अथक प्रयास से उन्होंने अब तक अपनी सात पुस्तकें हमसे प्रकाशित करवाई हैं। दान के रूप में धनसंग्रह करने में उनकी कोई सानी नहीं रखता। उन्हीं के पुरुषार्थ के कारण हम इन पुस्तकों का मूल्य अत्यल्प रख सके हैं। इस परोपकारी कार्य के लिए ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे !

अब तक प्रकाशित अन्य पुस्तकों की भाँति इस पुस्तक को भी हमने सर्वांगसुंदर बनाने का प्रयास किया है। मराठी संस्करण की भाँति इसमें भी कुछ प्रमुख विधियों के चित्र देकर इसकी विशेषता को कायम रखा है इसकी शोभा बढ़ाने में जिन्होंने हमें सहयोग दिया है, उन सबके प्रति हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

आशा है कि हमारे प्रिय पाठक इसके प्रचार-प्रसार में अपना बहुमूल्य योगदान देकर हमें उत्साहित करेंगे।

दि.२४।८।२०१०

विनीत

ज्ञानकुमार आर्य

ग्रंथाधार

१)	श्री भीमाशंकर चंदप्पा साखरे, आळंद, जि. गुलबर्गा(कर्नाटक)	५,०००
२)	दत्तात्रय बसप्पा कल्याणी, नारायण पेठ(आंध्र प्रदेश)	२,५००
३)	डॉ. मोहन मारुतीराव दिड्डीमनी, आळंद, जि. गुलबर्गा(कर्नाटक)	५००
४)	राजेंद्र पांडुरंगसा मिसकीन, आळंद, जि. गुलबर्गा(कर्नाटक)	५००
५)	सुरेश दत्तात्रय जी बुलबुले, गुलबर्गा (कर्नाटक)	५००
६)	कमल किशोर राठी, गुलबर्गा (कर्नाटक)	२०१
७)	प्रा. भालचंद्र शिंदे, गुलबर्गा (कर्नाटक)	२००
८)	डॉ. नागनाथराव घनाते, गुलबर्गा (कर्नाटक)	२००
९)	देवदत्त बालाजीराव ढगे, नारायण पेठ (आंध्र प्रदेश)	२००
१०)	राजकुमार बालाजी धोत्रे, पुरोहित, नारायण पेठ (आंध्र प्रदेश)	१५१
११)	डॉ. विवेक शुक्ला, बसवकल्याण, जि. गुलबर्गा(कर्नाटक)	११०
१२)	दत्तात्रय नागनाथराव दिवटे, सोलापूर (महाराष्ट्र)	१०१
१३)	शहा कन्हैयालाल, लातूर (महाराष्ट्र)	१०१
१४)	मेसर्स श्री. जी. मशीनरी, लातूर (महाराष्ट्र)	१०१
१५)	मारुतीराव नरसिंगराव मेंगजी, गुलबर्गा (कर्नाटक)	१०१
१६)	शशिकांत धोंडेराव कुलकर्णी, गुलबर्गा (कर्नाटक)	१००
१७)	गोविंद जी आर्य, गुलबर्गा (कर्नाटक)	१००
१८)	नरसिंह राजा ठाकूर(बालिका भक्ति प्रीतमसिंग बायस की ओर से),	१००

प्राप्तिस्थान

१. सुरभारती प्रकाशन, सीताराम नगर, लातूर (महाराष्ट्र)
२. गंपा बिगबाजार, सुपर मार्केट, गुलबर्गा (कर्नाटक)
३. श्री. माणिकराव भोसले, आर्य साहित्य भांडार, सीताराम नगर, लातूर (महाराष्ट्र)
४. श्री. विजयकुमार कानडे, विजय वस्त्र भांडार, निलंगा,जि.लातूर (महाराष्ट्र)
५. आर्यसमाज सोलापूर, कस्तुरबा मार्केट, सोलापूर (महाराष्ट्र)
६. आर्यसमाज परळी, परळी (वैद्यनाथ) जि. बीड (महाराष्ट्र)
७. आर्य समाज पिंपरी, रेल स्टेशन के पास, पिंपरी-पुणे (महाराष्ट्र)

समर्पण

मेरे लेखन-संकल्प में
विशिष्ट सहयोग
तथा
प्रेरणा देनेवाली
मेरी अर्धांगिणी
सौ. कमला को
आशीर्वाद के साथ—

— भीमाशंकर साखरे

हमारे प्रकाशन

मराठी :

१. उपयोजित पर्यावरण शिक्षण - डॉ. शारदा शेवतेकर, पृ.२४४, रु. १८०
२. दैनिक पंचमहायज्ञविधी - श्री. भीमाशंकर साखरे, पृ.८८, रु. १०/-
३. वैदिक विवाहपद्धती - श्री. भीमाशंकर साखरे, पृ.७२, रु.१२/-
४. उपनयन, वेदारंभ व समावर्तनसंस्कार-श्री. भीमाशंकर साखरे,पृ.७२,रु.१२/-

हिंदी :

१. दैनिक पंचमहायज्ञविधि - श्री भीमाशंकर साखरे, पृ. ११२, रु.१२/-
२. नरशार्दूल पंडित नरेंद्र जी - श्री भीमाशंकर साखरे, पृ. १६, निःशुल्क (दो संस्करण)
३. वैदिक विवाहसंस्कार - श्री भीमाशंकर साखरे, पृ. ८० रु. १५/-
४. उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तनसंस्कार - श्री भीमाशंकर साखरे, पृ.८० रु. १५/-

हमारे आगामी मराठी प्रकाशन

१. गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयनसंस्कार - श्री. भीमाशंकर साखरे
२. अंत्येष्टिकर्मविधी - श्री. भीमाशंकर साखरे
३. क्रांतिविजय (भारतीय क्रांतिकारकांची पद्यमय गाथा) -
   - श्री. गुलाबराव देशमुख
४. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता - काव्यानुवाद (मराठी) - श्री. विनायकराव कदम
५. महानुभव पंथ आणि आर्यसमाज : एक दृष्टिक्षेप - श्री. विनायकराव कदम
६. सुधारणावादी आंदोलनातील आर्यसमाजाचे स्थान - ज्ञानकुमार आर्य
७. असे होते दयानंद (महर्षी दयानंदांचे घटनात्मक जीवनचरित्र) -
   - ज्ञानकुमार आर्य

"आजकल की वर्ण (जाति) व्यवस्था आर्यों के लिए मरणव्यवस्था बन गई है। देखें, इस डायन से आर्यों का कब छुटकारा होता है। उस के लिए सब मिलकर जाति-पॉंति के बंधनों के तोड़कर अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करें।

- महर्षि दयानंद सरस्वती

अनुक्रमणिका

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। मनु. (२।६०)

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है और जहाँ विरोध, कलह होता है, वहाँ दुःख, दारिद्र्य और निन्दा निवास करती है। इसलिए जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है, वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न ही बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

- ('सत्यार्थप्रकाश' : चतुर्थ समुल्लास)

विवाहविधि के लिए आवश्यक साहित्य

१) यज्ञकुंड
२) समिधा-लगभग ३-४ किलो (आम, पलाश, औदुंबर, पीपल, चंदन आदि की सूखी तथा छोटे-बड़े आकार में कटी हुई लकड़ियां)
३) सामग्री-आधा किलो
४) घी - लगभग आधा किलो
५) मधुपर्क के लिए थोड़ा दही और मधु
६) लाजा- लगभग पाव किलो
७) शमीपत्र- लगभग एक अंजली
८) दीप और बाती
९) कपूर की बड़ी डिबिया
१०) दियासलाई की डिबिया
११) हलदी-कुंकुम
१२) स्थालिपाक
१३) चौकी -१ (पुरोहित के लिए)
१४) लकड़ी के आसन-३
१५) घी के लिए पात्र तथा चमच
१६) सामग्री के लिए चार छोटी थालियां
१७) आचमनी तथा आचमन-पात्र -४
१८) चार साधारण कटोरियां
१९) जलभरे लोटे-२
२०) यज्ञकुंड सजाने का साहित्य
२१) यज्ञोपवीत-२
२२) वर-वधू के लिए पुष्पमालाएं-२
२३) नया सूप
२४) शिला - छोटी, काली तथा चिकनी
२५) हाथ धोने के लिए परात
२६) आशीर्वाद के लिए फूल या चावल
२७) पानी का घड़ा-१
२८) दंड-१, २९) वधू-वर के वस्त्र, मंगलसूत्रादि
३०) स्थानीय लोकाचारानुसार अन्य आवश्यक साहित्य।

प्यारी बहू को प्यार दो।
दहेज का राक्षस जला दो।।
बहू है लक्ष्मी, प्यार से पालो।
दहेज की आग में मत जलाओ।।

सोलह संस्कार: एक विवेचन

गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ताः संस्काराः षोडशैवहि।(संस्कारविधि-पृ.७)

महर्षि स्वामी दयानंद कहते हैं कि, गर्भ से मृत्युपर्यंत सोलह संस्कार हैं। **दोषनिराकरणपूर्वकगुणाधानसंस्काराः**। दोषों को दूर करके गुणों की स्थापना करना ही मानवी जीवन का समुन्नत उद्देश है। आत्मा जब एक शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को धारण करता है, तब पूर्व जन्मों के प्रभाव भी साथ रहते हें। इन पूर्वजन्मार्जित संस्कारों का वाहक उसका सूक्ष्म शरीर रहता है। वे संस्कार एक शरीर से अन्य शरीर में प्रविष्ट होते हैं। उसमें कुछ अच्छे और कुछ बुरे प्रभाव के होते हैं। इन बुरे संस्कारों के प्रभाव के निराकरणार्थ संस्कारों की आवश्यकता रहती है। संस्कारों का संबंध मनुष्य के शरीर और आत्मा के साथ होता है। संस्कार पवित्रता के लिए होते हैं। संस्कार ही संस्कृति का उगमस्थान होते हैं। संस्कारों से शरीर, मन और आत्मा सुसंस्कृत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

मनुष्यजीवन का मार्ग सरल नहीं है। वह स्थान-स्थान पर करवटें लेता हुआ चक्राकार होते रहता है। परम कारुणिक ऋषि-मुनियों ने सोलह संस्कारों की योजना निर्माण की है, जिसके द्वारा मनुष्य योग्य मार्ग ग्रहण कर सकता है। ये सोलह संस्कार इस प्रकार हैं–

१) गर्भाधान– सुप्रजा निर्माण करने के लिए।

२) पुंसवन– गर्भ स्थिर होने पर तीसरे महीने में गर्भ के शारीरिक विकास के लिए।

३) सीमन्तोन्नयन– गर्भ के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए ६ठे से ८वें महीने में।

४) जातकर्म– प्रसूती से पूर्व तथा प्रसूती के पश्चात् करने की विधि।

५) नामकरण– जन्म के १०वें दिन या १०१वें दिन अथवा दूसरे वर्ष

के प्रारंभ में बालक का अर्थपूर्ण नाम रखना।

६) निष्क्रमण- चौथे महीने में बालक को सूर्यदर्शन व चंद्रदर्शन कराना।

७) अन्नप्राशन- पाचनशक्तिनुसार ६ठे महीने में अन्न देना।

८) चूड़ाकर्म- १वर्ष से लेकर ३रे वर्ष तक शिर के बाल मुंडाना।

९) कर्णवेध- ३रे या ५वें वर्ष में कान का वेध करना।

१०) उपनयन- ८वें वर्ष से २४वें वर्ष तक यज्ञोपवीत धारण और विद्यार्जन।

११) वेदारंभ- ८वें वर्ष से वेदाध्ययन, गायत्रीमंत्र और विद्याभ्यास।

१२) समावर्तन- विद्याभ्यास पूर्ण होने पर उपाधिदान समारोह।

१३) विवाह- सुप्रजावृद्धि के लिए स्त्री-पुरुषों को एकसूत्र में बांधना।

१४) वानप्रस्थ- आत्मचिंतन व परमात्मचिंतन के लिए गृहस्थाश्रम से निवृत्त होकर त्यागी बनना।

१५) संन्यास- सकाम कर्मों का त्याग करके निष्काम कर्म करते हुए समस्त जीवन मानवजाति के लिए बिताना।

१६) अन्त्येष्टि- मृत शरीर को भस्म करना। यह कर्म आत्मा के लिए न होकर मृत शरीर के लिए है। शरीर का प्रारंभ ऋतुदान से और अन्त इस अन्त्येष्टि कर्म से होता है।

इन सोलह संस्कारों में से १३ संस्कार उस आयु में होते हैं जबकि संस्कारों से मानव को सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी ये सोलह संस्कार मानव को सुसंस्कृत बनाकर मानवजाति को प्रेरणा दे सकते हैं। शुभ गुण एक ही समय में आ नहीं सकते तथा दुर्गुण एक ही समय में जा नहीं सकते। इसके लिए बहु काल लगता है। अतएव हमें संस्कारों पर विशेष बल देना चाहिए। मानवसमाज को सुधारने का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

मानव का नवनिर्माण आज के विज्ञानयुग में कृत्रिम पद्धति से जीवाणू (जीन्स) द्वारा किया जा रहा है। जीवाणु द्वारा नवनिमार्ण की प्रक्रिया यह है कि एक प्रकार के गुणों के जीवाणु को प्रजननतत्वों से निकालकर वहाँ अन्य प्रकार के गुणों के जीवाणु को आरोपित (इम्प्लांट) किया जाता है। यह विज्ञान का एक चमत्कार है। तथापि वास्तव में कहाँ तक संभव है, यह संदेहास्पद है। आज के वैज्ञानिक प्रयोग और धार्मिक संस्कारपद्धति, इन दोनों का उद्देश एक ही है । अर्थात् वह है मानव के विकास की दिशा में परिवर्तन करना, वंशानुसंक्रमण से छुटकारा पाना तथा पर्यावरण की सुरक्षा करके उन्नत करना।

वैदिक विवाह : एक विवेचन

मानवजीवन का विभाजन चार कालखंडों में (आश्रमों में) किया गया है। ये आश्रम हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। जिस प्रकार प्राणवायु सब जीवों का मूलाधार है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी इन सबका निर्वाह होता है। मनुष्य को अपने जीवनकाल में पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण ये तीन ऋण चुकाने हैं। वंशसूत्र टूटने नहीं देना ही पितृऋण चुकाना है, जो एक धार्मिक कर्तव्य है। पुरुष परब्रह्म का व स्त्री प्रकृति की प्रतिनिधि है। दोनों महान तथापि अपूर्ण हैं। विवाह की यज्ञवेदी पर दोनों मिलकर पूर्ण हो जाते हैं। इस मोहक मिलन को ही विवाह अथवा जीवनरथ कहा जाता है। गृहस्थाश्रम के संबंध में महर्षि दयानंद लिखते हैं– ऐहिक व पारलौकिक सुख प्राप्त करके अपने सामर्थ्यानुसार परोपकार करना, नियतकाल में यथाविधि ईश्वरोपासना तथा गृहकृत्य करना, सत्यधर्म में ही तन,मन,धन लगाना और धर्मानुसार संतानोत्पत्ति करना इसी का नाम गृहस्थाश्रम है।

गृहस्थधर्म ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ धर्म है। गृहस्थाश्रम मनुष्य को भिन्नता से एकता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जानेवाला आश्रम है। विवाह एक सामाजिक बंधन है। वह केवल दो व्यक्तियों या दो

परिवारों को ही नहीं तो दो समाजों को एक ही सूत्र में बांधनेवाला है। स्त्री-

पुरुष का संयुक्त जीवन ही संपूर्ण जीवन है। विवाह के बंधन से समीप आए हुए दो जीवों को एक-दूसरे की आध्यात्मिक उन्नति के लिए सहायक होना पड़ता है। वैवाहिक जीवन से एक-दूसरे के स्वभावदोषों का निर्मूलन होकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर एकरूपता होकर एक-दूसरे में और अधिक प्रेम बढ़ता है तथा जीवन अधिक समृद्ध और सुखद हो सकता है। ईशचिंतन से वैयक्तिक जीवन सुखी, समाधानी और समन्वयवादी होने में अधिक सहायता होती है। जो व्यक्ति दोनों के एकत्रित जीने में तथा सहजीवन में सफल नहीं होता, वह अन्य सामाजिक कार्यों में भी यशस्वी होने में असमर्थ रहता है। आज विवाह जैसी पद्धतियाँ बलहीन व दिशाहीन बन गई हैं। विवाहपूर्व लड़के-लड़कियों की जन्मकुंडलियाँ देखते रहने से उत्तम संस्कारों के लड़के और सुसंस्कारित लड़कियों को स्वीकारा नहीं जाता। २६या ३६गुणों को न देखते हुए निष्णात वैद्यों से उनकी शारीरिक जांच करनी चाहिए। इस संबंध में श्रीमती अनी बेझंट ने लिखा है– प्राचीन आर्ष ग्रंथों में जिस प्रकार विवाह का महत्व व्यक्त किया गया है, उसकी गंभीरता और पवित्रता को दर्शाया गया है, वैसा संसार के किसी भी देश, जाति या मत-पंथ में दिखाई नहीं देता। वैदिक धर्म में लड़के-लड़कियों के गुण, कर्म और स्वभाव की ओर ध्यान देने पर अधिक बल दिया गया है। परंतु आज दुर्भाग्य से चमड़ी और दमड़ी देखकर विवाह निश्चित किए जाते हैं। यह अत्यंत खेद का विषय है। इस संबंध में समाज चिंतन नहीं करता और न ही गंभीरता से सोचता है। महर्षि दयानंद ने कहा है कि, कन्या (वधू) दूर स्थान की होनी चाहिए। (दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति।) इसके साथ ही उन्होंने अंतर्जातीय, आंतरप्रांतीय और आंतरदेशीय विवाह कराने पर बल दिया है।

मनुस्मृति (३।९) में विवाह के आठ प्रकार बताए हैं। अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये वे आठ

प्रकार हैं। इनमें से प्रथम चार प्रकार के विवाहों को उत्तम माना गया है। उन्हें धर्मविवाह कहा जाता है। शेष अंतिम चार प्रकार के विवाह अधर्म व निकृष्ट माने जाते हैं। तथापि 'ब्राह्म विवाह' को ही वैदिक विवाह कहा गया है। वैदिक विवाह पद्धति श्रेष्ठ, सुसंस्कृत और वैधानिक रहने से धार्मिकता के मूल तत्व दृढ़ होते हैं। यह गृहस्थरूपी मंदिर की ठोस बुनियाद है। इसमें वधू-वर उपस्थित जनसमुदाय के सामने, यज्ञाग्नि की साक्षी से, पवित्र वेदमंत्रों का पठन करते हुए विविध विधियाँ करते हैं। 'वि' का अर्थ है - विशेष रूप से तथा 'वाह' का अर्थ है - वहन करना, स्वीकारना। स्त्री और पुरुष ये विवाहरूपी वाहन के दो पहिए हैं। वैवाहिक जीवन यह साध्य है, तो विवाह पद्धति साधन है। साध्य और साधन दोनों पवित्र , आदर्श तथा प्रेरणादायक चाहिए। जीवन की सफलता क्रियात्मक आचरण से सिद्ध होती है। यह पद्धति वधू-वरों को क्रियात्मक दृष्टि से प्रेरणा देनेवाली है। इससे दोनों के आगामी जीवन का अभ्युदय होता है। परंतु वर्तमान में कई अनावश्यक बातें विवाह में घुस गई हैं। जैसे– वर की घोड़े पर भव्य शोभायात्रा, विविध प्रकार के बाजे, बारात में शराब पीकर नाचना-गाना, शराब व मांस की पार्टियाँ होना आदि।

विवाहविधि प्रारंभ (पूर्वविधि)

सत्कारविधि

सामान्यतया विवाहसंस्कार वधू के घर होना चाहिए। वर अपने पक्ष के लोगों को लेकर वधू के घर विवाहमंडप में आता है। यही वर की बारात है। बाराती वधू के द्वार पर आने पर वधू, वधू के माता-पिता व आप्तेष्टादि द्वार पर उनका स्वागत करते हैं। आए हुए अतिथियों को पूज्य, वंदनीय मानकर उनका योग्य आदरातिथ्य करने का मानो यह प्रात्यक्षिक ही है। वधू वर के गले में पुष्पमाला पहनाती है। वर भी वधू के गले में पुष्पमाला डालकर वधू का स्वागत करता है। घर में आनेवाली वधू भी अतिथि ही है। गृहस्थ जीवन का आरंभ इस प्रकार एक-दूसरे के आदर-

सत्कार से होता है। आज किया जा रहा सत्कार केवल इसी दिन के लिए नहीं है बल्कि आजन्म इसी प्रकार परस्पर सत्कार होना चाहिए। यही वास्तविक गृहस्थधर्म है। वधू वर को सुशोभित आसन पर विराजमान होने की प्रार्थना करती है। उसकी दृष्टि से पति ही उसका आराध्य देव है। पति की दृष्टि से पत्नी ही उसकी आराध्य देवी है।

स्वागत

प्रथम वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहें। तदनंतर **वधू, वधू के माता-पिता** तथा **अन्य कार्यकर्ता** वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रहकर आगे का वाक्य कहें–

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्।। - पार.१।३।४

आप हमारे पूजनीय हैं। हम आपका स्वागत करते हैं।

उसपर **वर** इस प्रकार प्रत्युत्तर देवें–

ओम् अर्चय।। - आपका स्वागत स्वीकार है।

पश्चात् वधू वर के लिए रखे हुए उत्तम आसन को हाथ में लेकर वर के सम्मुख पकड़कर कहें–

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्।।

आप इस उत्तम आसन को ग्रहण करें।

उसपर **वर** निम्न वाक्य कहें–

ओं प्रतिगृह्णामि।।

धन्यवाद। मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर **वर** वधू के हाथों से आसन लेकर उसपर विवाहमंडप में पूर्वाभिमुख विराजमान होकर कहें -

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति।। -पार. १।३।८

- मैं प्रकाशमान नक्षत्रों में से श्रेष्ठ सूर्यसमान हूँ। तथा कुल, ज्ञान, आचरण, स्वास्थ्यपूर्ण शरीर, धन, प्रतिष्ठा आदि गुणों से समान लोगों में

सर्वश्रेष्ठ और तेजस्वी हूँ। मैं इस आसन पर विराजमान हो रहा हूँ। जो कोई मुझे अपमानित करना चाहेगा, उसे मैं इस आसन के समान नीचे दबाकर रखूँगा।

इसके पश्चात् **वधू** सुंदर पात्र में जल भरकर वर के आगे धरकर कहें-

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्।।

हाथ-पैर धोने के लिए यह शुद्ध जल लीजिए।

पश्चात् **वर** निम्न वाक्य कहें–

ओं प्रतिगृह्णामि।। -मैं स्वीकार करता हूँ।

ऐसा कहकर वधू के हाथ से जलपात्र लेकर हाथ-पैर धो लें और कहें –

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः।।

हे जल, तू इस विराट विश्व का सार है। मेरे पैरों की थकावट दूर करने के लिए और श्रमपरिहार के लिए इस सुशोभित जल को ग्रहण कर रहा हूँ।

तदनंतर मुखप्रक्षालन के लिए जल से भरा हुआ पात्र वर के हाथों में देते हुए **वधू** कहें–

ओम् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम्।।

- मुखप्रक्षालनार्थ यह जल लीजिए।

वधू केहाथों से जलपात्र लेते हुए **वर** कहें–

ओं प्रतिगृह्णामि।।

मैं इसे स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर मुखप्रक्षालन करके कहें-

ओम् आप स्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवानि।

ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।

अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः।।

– हे जलो, तुम ही मेरा हित करनेवाले हो। आपसे ही मैं आरोग्यरूप सभी मनोरथों को साध्य करूँगा। मैं तुम्हें सागर की ओर भेजता हूँ। इसलिए कि तुम अपने कारणभूत मेघरूपों में परिवर्तित हो जाते हो। हमारी संतान शूर, रोग तथा दुःख-दारिद्र्यरहित होवें। हमें कभी जल का अभाव न हो।

इसके पश्चात् **वधू** जल से भरा हुआ आचमनपात्र वर को देते हुए कहें-

ओम् आचम्यानीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम्।।

– आचमन के लिए यह जल लीजिए।

इसपर **वर** निम्न वाक्य कहें–

ओं प्रतिगृह्णामि।।

मैं इसे स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर वधू से आचमनपात्र लेकर तीन आचमन करते हुए कहें–

ओम् आमागन् यशसा सँ्सृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम्।।

– हे जलो, तुम मुझे चारों ओर से प्राप्त हो गए हो। मुझे अपने यश, कांति और तेज से युक्त करो। मुझे लोगों में प्रिय बनाकर पशुओं का स्वामी बनाओ। मुझे शरीर से निरोगी बनाओ।

मधुपर्क से सत्कार

वधू मधुपर्कपात्र हाथ में लेकर वर से विनंती करें–

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्।।

यह मधुपर्क है, कृपया स्वीकार कीजिए।

इसपर **वर** कहें– **ओं प्रतिगृह्णामि।।** – मैं ग्रहण करता हूँ।

ऐसा कहकर वधू से उस पात्र को लेकर निम्न मंत्र कहते हुए मधुपर्क की ओर देखें।

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे।।

– मैं तुम्हें हितकर्ता की दृष्टि से देखता हूँ।

फिर **वर** मधुपर्क के पात्र को बाएँ हाथ में लेकर कहें–

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि।।

– इस सवितादेव की सृष्टि में मैं तुम्हें विशाल बाहू और बलशाली हाथों से स्वीकार करता हूँ।

तत्पश्चात् निम्न तीन मंत्रों का उच्चारण करते हुए मधुपर्क का अवलोकन करें–

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।१।।

ओं भूर्भुवः स्वः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवँ्रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।।२।।

ओं भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्त् नः।।३।। यजु.१३।२७-२९।।

भावार्थ– हे सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा, प्रत्येक ऋतु में मधुर हवा बहती रहे। नदियों व जलाशयों से मधुर जल बहता रहे। हमारे लिए औषधियाँ, रात्र, उषःकाल, पृथ्वी का प्रत्येक कण, पर्जन्य के द्वारा हमारा पोषण करे। आकाश, वनस्पतियाँ, ये सभी पदार्थ मधुर रहें तथा मुझे माधुर्य देते रहें। मेरे जीवन को मधुर बनावें। हमारे लिए सूर्य मधुर हो अर्थात् तापदायक न हो। गौ आदि पशु मधुर व लाभदायक हों। मुझे सर्वत्र माधुर्य का अनुभव होवे।

तत्पश्चात् **वर** दाहिने हाथ की तर्जनी और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोकर निम्न मंत्र कहें–

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि।।

– हे जठराग्नि ! यह मधुपर्क तेरे लिए अन्न है। तेरे लिए भोज्य(सेवन

करने योग्य) है। मैं इस मधुपर्क से गिरे हुए अनिष्टकारक पदार्थ निकालकर फेंक रहा हूँ।

पश्चात् **वर** निम्न मंत्र कहते हुए उस-उस दिशा की ओर मधुपर्क छिड़कें।

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्तु।। - इस मंत्र से पूर्व दिशा

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु।। - इस मंत्र से दक्षिण दिशा

ओम् आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्तु।।- इससे पश्चिम दिशा

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु।।-इससे उत्तर दिशा

ओं भूत्येभ्यस्त्वा परिगृह्णामि।। -- इससे तीन बार ऊपर छिड़कें।

भावार्थ- हे मधुपर्क ! यज्ञवेदी के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन दिशाओं में क्रमशः विराजमान वसु, रुद्र, आदित्य और विश्वदेव संज्ञा तथा विद्वान क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप, जगती और अनुष्टुप छंद तेरा सेवन करें। अपना शरीर निर्माण करनेवाले पंचमहाभूतों के नाम से उनके उपयोग के लिए मैं तेरा स्वीकार कर रहा हूँ।

पश्चात् मधुपर्क के तीन भाग करके तीन पात्रों में रखें। निम्न मंत्र तीन बार कहते हुए एक-एक पात्र से थोड़ा-थोड़ा मधुपर्क प्राशन करें।

ओं यन्मधूनो मधव्यं परमँ् रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।।

- यह पुष्पों, अन्न और वनस्पतियों का सर्वोत्कृष्ट, भक्षणीय, स्वच्छ स्वरूप है। मैं इसका भक्षण करके मधुरभाषी, मधुर स्वभावयुक्त हो जाऊँ।

इसके पश्चात् आगे के दो मंत्र कहकर आचमन करें।

तदनंतर आगे के मंत्रों द्वारा **वर** अंगस्पर्श करें ।

मार्जनमंत्र

ओं वाङ्म आस्येस्तु।। इससे मुख को

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।। इससे दोनों नथुनों को

ओम्अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।। इससे दोनों आँखों को

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।। इससे दोनों कानों को

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।। इससे भुजाओं को,

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।। इससे जंघाओं को स्पर्श करके

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। इससे शरीर के सभी भागों पर जल छिड़के।

विवेचन- वर को पैर धोने के लिए, मुखप्रक्षालन के लिए और आचमन के लिए अलग-अलग जल दिया जाता है। आचमन व अंगस्पर्श से समस्त शरीररूपी मंदिर पवित्र और शुद्ध किए बिना आत्मा को पवित्र रखना शक्य नहीं होता। इसके पश्चात् मधुपर्क दिया जाता है। मधु, दही और घृत का विशिष्ट प्रमाण में किया हुआ मिश्रण आरोग्यदायक, बलवर्धक और श्रमपरिहारक औषधी है। मधुपर्क का समस्त दिशाओं में सिंचन करने के बाद वर उसे प्रसन्नतापूर्वक प्राशन करता है। प्रथम दश दिशाओं के भूखे प्राणियों का विचार और तत्पश्चात् स्वसेवन। इस प्रकार का आचरण आजन्म करते रहना यह एक आदर्श शिक्षा है। अकेले श्रम करने से मानव को भोग्य पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते। उन्हें प्राप्त करने में अनेकों का सहयोग अपेक्षित रहता है। इसलिए अन्यों को देकर स्वयं सेवन करना यह वैदिक आदर्श है।

गोदान

गाय भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। हमारे ऋषिमुनियों ने विवाह-प्रसंग पर गोदान का विधान करके गोरक्षा का अमोघ उपाय चुना है। अपनी कन्या जिस परिवार में पदार्पण करनेवाली है, वह परिवार दूध, दही, घृत तथा धन-धान्य से संपन्न रहे; ऐसा कौन-से माता-पिता को प्रतीत नहीं होता? इसी हेतु से माता-पिता अपनी सुकन्या के लिए गोदान करते हैं। वर्तमान में कई कारणों से गो-पालन नहीं हो सकता। अतः गौ के बदले कुछ द्रव्य दिया जाता है।

तत्पश्चात् **वधू** निम्न मंत्र कहते हुए वर को गौ,द्रव्यादि देवें।

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम्।।

–बुद्धि और धन-धान्यादि की प्रतिनिधिरूप इस गौ का आप स्वीकार करें।

इसपर **वर** कहें– **ओं प्रतिगृह्णामि।।** – मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर वधू ने दिया हुआ द्रव्यादि ग्रहण करें।

कन्यादान (कन्यास्वीकरण/कन्यासमर्पण)

विवेचन– वैदिक विवाह पद्धति में कन्यादान यह एक हृदयस्पर्शी विधि है। माता-पिता ने जिस कन्या को जन्म दिया, लाड़-प्यार से जिसका पालन किया, उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और शैक्षणिक स्तर को श्रेष्ठ और सुसंस्कृत बनाने के लिए दिन-रात परिश्रम उठाया, ऐसी इस कन्या को अपने हाथों से वर को सौंपते समय उनका हृदय गद्‌गद होना, कंठ भर आना स्वाभाविक है। माता-पिता को इस बात का आनंद होता है कि, वे अपनी कन्या के लिए उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार जीवनसाथी चुनकर उसके हाथों में अपनी कन्या का हाथ सौंप रहे हैं। कन्या यह सरिता है। पतिरूपी सागर में विलीन होने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। अतः मन को होनेवाली वेदना को दूर कर आनंद मानना चाहिए। कन्या केवल वर की सेवा करने के लिए ही समर्पित नहीं की जाती, बल्कि वर के माध्यम से शाश्वत, सत्यसनातन धर्म की सेवा करने, धर्म की रक्षा करने और धर्म की वृद्धि करने के लिए यह कन्यादान होता है। कितनी आदर्श और उदात्त कल्पना है यह!

तदनंतर **वधू के माता-पिता** या कार्यकर्ता आगे का मंत्र कहकर वर के दक्षिण हाथ में वधू का दक्षिण हाथ रखकर कन्यादान करें।

ओम् अमुक[१] गोत्रोत्पन्नामिमाममुक[२] नाम्नीम् अलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्।।

——इस गोत्र/कुल में उत्पन्न हुई ——नाम की वस्त्रालंकार

से सुशोभित इस कन्या का आप स्वीकार करें।

वर कहें- **ओं प्रतिगृह्णामि।।** मैं इस कन्या का स्वीकार करता हूँ। ((१)अमुक पद के स्थान में वधू के गोत्र और कुल का नामोच्चारण करें। (२) अमुक पद के स्थान में वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन में उच्चारण करें। जैसे- **ओं कश्यपगोत्रोत्पन्नामिमां वसुन्धरां नाम्नीं.....)**

वस्त्रधारण

शरीराच्छादन, प्रतिष्ठा, दीर्घायु तथा आरोग्यप्राप्ति के लिए वर की ओर से अपने घर में काते हुए, बुने हुए, शुद्ध खादी के वस्त्र वधू को दिए जाते हैं। वर स्वयं भी वस्त्र धारण करता है। यहाँ वर मानो उत्तम वस्त्रालंकार से अपनी सहचारिणी को वृद्धावस्था तक बनाव-सिंगार से रखने का संकल्प ही करता है। परमात्मा मनुष्य को बनाता है, तो वस्त्रों से उसे शोभा आती है।

पश्चात् **वर** निम्न मंत्र कहकर वधू को उत्तम वस्त्र देवें।

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।। पार. १।४।१२।।

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।।

पार. १।४।१३।।

भावार्थ– हे आयुष्मती ! शील और शरीररक्षणार्थ इन सुंदर वस्त्रों को योग्य प्रकार से धारण कर। वृद्धावस्था तक मेरे संग चल। जनसमुदाय में प्रशंसनीय और वर्चस्विनी होकर सौ वर्षों तक जीवन बिता। पति के साथ अनुकूल आचरण करते हुए धन और पुत्रों को प्राप्त कर। जिन स्त्रियों ने स्वयं के हाथों से ये वस्त्र बनाए हैं, उनसे वृद्धावस्था तक संबंध रख।

पश्चात् वर भी निम्न मंत्र पढ़ते हुए वस्त्र धारण करें।

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये।।

-पार.२।६।२०

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती।
यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्।। -पार.२।६।२१।।

– हे पितरो! मैं संकल्पबद्ध हूँ कि वस्त्रों से शरीर को आच्छादित करके, कीर्ति धारण कर, दीर्घायु के लिए वृद्धावस्था तक जीवित रहूँ। मैं समस्त सुखों की पूर्तता करते हुए सौ शरद ऋतु तक जीवित रहूँ। ज्ञानी व धनी बनकर वृद्धावस्था तक रहूँ। मुझे पिता व माता, जो सूर्य और पृथ्वी के समान हैं, वे कीर्ति व प्रतिष्ठा के साथ प्राप्त होवें। समाज के धनवान व विद्वान मुझे प्राप्त होवें। ऐश्वर्यशाली व तेजस्वी पुरुषों से मुझे कीर्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होवें। मुझे आशीर्वाद दे दीजिए कि मेरे जीवन में मेरी कीर्ति सदोदित बढ़ती रहे।

यज्ञ की सिद्धता

विवेचन– यज्ञ यह मानवी जीवन का श्रेष्ठतम , पवित्र पुण्यकर्म तथा त्याग का प्रतीक है। यह विधि पवित्र अंतःकरण से भली-भाँति करनी चाहिए। यज्ञ की 'इदन्न मम' यह भावना महत्वपूर्ण है। हे प्रभो! यह मेरा नहीं, सब तेरा ही है। तेरा तुझे मैं समर्पित कर रहा हूँ। इस प्रकार यह यज्ञकर्म त्याग व आदर्श की शिक्षा देने के लिए है। यज्ञ से त्यागभावना की प्रतिष्ठा तो होती ही है, साथ ही कुछ भोतिक लाभ भी होते हैं। इस पवित्र कर्म से समस्त प्राणिमात्र का कल्याण होता है।

इस यज्ञकर्म में प्रदूषित हुई हवा की शुद्धि करने की अद्भुत शक्ति है। इसमें अन्न और जलवायु की शुद्धि के साथ घातक रोगजंतुओं का संहार करने की शक्ति भी मौजूद है। अब इस यज्ञकर्म की ओर संसार के वैज्ञानिकों का ध्यान केंद्रित हुआ है। अब यज्ञ के वैज्ञानिक तथ्य वैज्ञानिक

रीति से संसार के सम्मुख आ रहे हैं।

कलश-स्थापन व दंडधारण

इस अवसर पर वरपक्ष की ओर से एक पुरुष जल से भरा हुआ कलश (घड़ा) लेकर यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा करके कुंड के दक्षिण में कलश रखकर उत्तराभिमुख बैठा रहे। वैसे ही वर की ओर से अन्य पुरुष हाथ में दंड (लाठी या लकड़ी) लेकर कुंड के दक्षिण में उत्तराभिमुख बैठा रहे। इन दोनों को यज्ञसमाप्ति तक बैठना पड़ता है। वधू-वर यज्ञप्रदक्षिणा करते समय ये दोनों पुरुष कलश व दंड लेकर उनके पीछे चलते रहें। प्राचीन काल में ऐसा करने में बहुत दूरदृष्टि और सतर्कता बताई है। कुछ अविचारी, विघ्नसंतोषी अथवा शत्रु यज्ञस्थल पर उपस्थित रहकर विवाह में बाधा डालने की संभावना को नकार नहीं सकते। ऐसे प्रसंग पर संरक्षण के लिए दंड अत्यावश्यक है। यज्ञपरिक्रमा करते समय नए कपड़ों को अग्निस्पर्श का धोखा भी होने की संभावना रहती है। अतएव अग्निशमन के लिए जल का कलश भी उतना ही उपयोगी रहता है।

इस विधि में वधू का सहोदर भाई, चचेरा भाई, ममेरा या मौसेरा भाई एक सूप में शमी वृक्ष के सूखे पत्ते मिलाई हुई चार अंजली लाजाएँ (धान की खीलें) लेकर पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। वैसे ही एक कार्यकर्ता एक शिला (सपाट, सुंदर, चिकना, काला छोटा पत्थर) और वर-वधू के लिए दो कुशासन (दर्भासन), या यज्ञीय तृणासन या यज्ञीय वृक्षों के छालों के आसन यज्ञकुंड के पश्चिम भाग में रखें।

वर-वधू की प्रतिज्ञा

इसके पश्चात् **वधू-वर** उत्तम वस्त्रालंकार से आभूषित होकर यज्ञमंडप में प्रवेश करके निम्न मंत्र कहें-

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।

सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।। - ऋ.१०।८५।४७

भावार्थ- इस विवाह मंडप में उपस्थित सभ्य जनो! आप यह समझ लें

कि हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के लिए एक-दूसरे का स्वीकार कर रहे हैं। हम दोनों के हृदय पवित्र, निर्मल, शांत और शीतल जल के समान एक-दूसरे में विलीन हुए हैं। जिस प्रकार हमें प्राणवायु प्रिय है, उसी प्रकार हम दोनों में प्रीति बनी रहेगी। जैसे परमेश्वर ने सृष्टि को धारण किया है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे को सहारा देंगे। वक्ता और श्रोता में जिस प्रकार परस्पर स्नेह रहता है, उसी प्रकार हम दोनों के हृदयों में एक-दूसरे के लिए दृढ़ प्रेम रहेगा।

विवेचन- वर और वधू ये दोनों भिन्न परिवार के हैं। दो अलग-अलग स्थानों का जल किसी एक पात्र में एकत्रित करने पर उस जल को फिरसे अलग-अलग करना असंभव होता है। तद्वत वधू-वरों के अभिन्न हुए हृदयों को संसार की कोई भी शक्ति विभक्त कर नहीं पाती। कितनी आदर्श कल्पना है यह ! आज-कल जैसे प्रथम प्रेम, पश्चात् विवाह और फिर विवाहविच्छेद देखने में आता है, वैसा यह ऊपरी तौर का प्रेम नहीं है। बल्कि वर-वधू के हृदयों की अभिन्नता विवाह के पश्चात् भी सदा के लिए कायम रहनेवाली है। यह तो परस्पर समर्पित होने का संकल्प है। संसार की किसी भी विवाह पद्धति में इस प्रकार की विधि देखने में नहीं आती। इसमें मूल भावना है दो हृदयों का मिलन।

पश्चात् **वर** अपने दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़कर कहें–

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा।
हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ[१] ।।

– हे........[२] ! सूर्य जिस प्रकार पवित्र वायु, जलादि को तेजस्वी किरणों द्वारा ग्रहण करता है, जिससे सूर्य दूर के पदार्थों को और दिशाओं को प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू प्रेमपूर्वक स्वेच्छा से मुझे प्राप्त हुई है। वह परमेश्वर तुझे मेरे मन के अनुकूल करें।

(१) 'असौ' पद के स्थान पर कन्या के नाम का उच्चारण करें।

२) रिक्त स्थान में कन्या का नाम संबोधन एकवचन में कहें।)

तदनंतर **वर** निम्न मंत्र कहें–

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

ऋ.१०।८५।४४

ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै।।

पार.१।४।१६

-हे वरानने ! तू पति का विरोध करनेवाली न हो। वह परमात्मा जो प्राणदाता, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप है, उसकी कृपा से तू प्रेमयुक्त दृष्टि रखनेवाली हो। तू सब का मंगल करनेवाली, पवित्र अंतःकरणयुक्त, शुभ गुणकर्मस्वभाववाली वीरों की जन्मदात्री, देवरों से स्नेह रखनेवाली होकर मनुष्यों और गौ आदि पशुओं को भी सुख देनेवाली हो। मैं भी इसी प्रकार का ही वर्तन करूँगा।

हे देवी ! परमपिता परमात्मा तुझे मेरा कल्याण करनेवाली बनावे, जिससे हम दोनों श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करके सुख से गृहस्थ जीवन बिताते रहें।

पश्चात् वधू-वर दोनों **यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा** करके यज्ञकुंड के पश्चिम में रखे हुए आसनों पर विराजें। **वधू** वर के दक्षिण भाग में बैठकर अगला मंत्र कहें--

ओं प्र मे पतियानः पन्था कल्पताँ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।।

मंत्रब्राह्मण १।१।८

– हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! यहाँ से आगे मेरा जीवनमार्ग तेरी कृपा से पति के धर्माचरण का ही मार्ग बने। मैं पति के घर में सुखी, प्रसन्न तथा दुःखरहित होकर जाऊँगी।

पुरोहित-नियुक्ति : पुरोहित की नियुक्ति वधू के अथवा वर के माता-पिता की ओर से की जाती है। यदि वधू के घर विवाह हो तो वधू के माता-पिता और यदि वर के घर विवाह हो तो वर के माता-पिता यजमान रहते हैं।

यजमान निम्न प्रकार से पुरोहित की नियुक्ति करें।

यजमान- ओमावसोः सदने सीद।

-ओंकार का स्मरण करके मैं आपको विनती करता हूँ कि आप यज्ञ के शुभासन पर कार्यसमाप्ति तक विराजमान होवें।

पुरोहित- ओं सीदामि। - मैं विराजमान होता हूँ।

ऐसा कहकर पुरोहित यज्ञकुंड के दक्षिण में उत्तराभिमुख बैठें।

यजमान- अहम् अद्य मम पुत्रस्य/पुत्र्याः विवाहसंस्कारकर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

– मैं मेरे पुत्र/पुत्री का विवाहसंस्कार करने के लिए आपकी नियुक्ति करता हूँ।

पुरोहित- व्रतोऽस्मि। -मैं स्वीकार करता हूँ।

संकल्पपाठ

महर्षि दयानंद सरस्वतीरचित 'संस्कारविधि' में या 'दैनिक पञ्चमहायज्ञविधि' में तथा सार्वदेशिक सभा की यज्ञविधि में संकल्पपाठ का उल्लेख नहीं है। पंचमहायज्ञविधि के अधिकांश संपादकों और प्रकाशकों ने भी संकल्पपाठ नहीं रखा है। जिन्हें यह आवश्यक लगे, वे ऋत्विग्वरण के पश्चात् इसका वाचन कर सकते हैं।

यजमान : ओ३म् तत्सत् परमात्मने सच्चिदानन्दाय नमोनमः। अद्य तस्य सामर्थ्येन प्रवर्त्तमानस्य ब्रह्मणः द्वितीये प्रहरार्धे अष्टमे श्वेतवराहकल्पे, सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे

कलिप्रथमचरणे .... सृष्टिसंवत्सरे .... वैक्रमाब्दे ....

शालिवाहनशके .... अयने .... ऋतौ .... मासे .... पक्षे .... तिथौ .... दिवसे .... नक्षत्रे .... लग्ने .... योगे .... करणे .... मुहूर्ते भूलोके, जम्बुद्वीपे, आर्यावर्ते, भारतवर्षे, ... भागे .... तीरे .... राज्ये .... मण्डले .... उपमण्डले .... ग्रामे .... प्राङ्गणे .... गोत्रोत्पन्नः सपत्नीकः .... नाम्नः पुत्रः .... नाम्नः पौत्रः .... नामाऽहं .... श्रीमतः .... नाम्नः धर्मात्मनः आप्तविदुषः ब्रह्मत्वे यथाशास्त्रं यथाविधिं मम पुत्रस्य / पुत्र्याः विवाहसंस्कारं करिष्ये।

पुरोहित-नियुक्ति के पश्चात् प्रमुख विधि प्रारंभ करें। **पुरोहित, वर-वधू** तथा **कार्यकर्ता** निम्न मंत्रों से **आचमन** और **अंगस्पर्श** करें।

आचमन

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।। १ ।। इससे पहला आचमन

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।। २ ।। इससे दूसरा आचमन

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।३।।इससे तीसरा आचमन

अंगस्पर्श

बाईं हथेली में जल लेकर अंगस्पर्श करें।

ओं वाङ्म आस्येस्तु।। इससे मुख को

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।। इससे दोनों नथुनों को

ओम्अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।। इससे दोनों आँखों को

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।। इससे दोनों कानों को

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।। इससे भुजाओं को,

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।। इससे जंघाओं को स्पर्श करके

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। इससे शरीर के सभी भागों पर जल छिड़के।

यज्ञोपवीत-धारण

इस विधि को पूर्ण करने के लिए यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करना आवश्यक होता है। यदि इससे पूर्व ही वर-वधू ने यज्ञोपवीत धारण कर लिया है तो इस समय उसे फिरसे धारण करने की आवश्यकता नहीं। यह यज्ञोपवीत धर्म तथा संस्कृति का प्रतीक तो है ही, सिवाय यह एक संकल्पसूत्र भी है। इसे धारण कर पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण इन तीन ऋणों से मुक्त होने का संकल्प करना है। जो यह संकल्प करते हैं, उन्हें ही यज्ञ करने का अधिकार रहता है। अतः यज्ञारंभ से पूर्व विधिवत यज्ञोपवीत धारण करवाकर तदनंतर यज्ञ प्रारंभ करना चाहिए।

निम्न मंत्र बोलकर यज्ञोपवीत धारण कराएँ।

यज्ञोपवीत धारण करने का मंत्र

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।१।।
यज्ञोपवीतमसियज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।२।।

–यह ब्रह्मसूत्र(यज्ञोपवीत) अत्यंत पवित्र है, जो पूर्व काल से चला आ रहा है। यह प्रजापति के साथ ही आदिकाल से वर्तमान है। यह आयु को देनेवाला है। जीवन में आगे ही आगे ले जानेवाला है। उसे कंधे पर छोड़। यह यज्ञोपवीत निर्मल है, बल और तेज देनेवाला है। तू यज्ञोपवीत है, तुझे यज्ञोपवीत से अपने समीप लाता हूँ।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।। १ ।। यजु. ३०।३।।

भावार्थ- हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे संपूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वे सब हमको प्राप्त कीजिए।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।२।।

यजु.१३।४।।

भावार्थ- जो स्वप्रकाशस्वरूप है और जिसने प्रकाश करनेवाले सूर्य, चंद्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किए हैं, जो उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप है, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, जो इस भूमि और सूर्यादि का धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।३।।

यजु.२५।१३।।

भावार्थ- जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल को देनेवाला, जिसकी सब विद्वान लोग उपासना करते हैं ओर जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप, शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्षसुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देनेवाले परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अंतःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।४।।

यजु. २३।३।।

भावार्थ- जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का अपनी अनंत महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ऐश्वर्य के देनेवाले परमात्मा के लिए अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।।

यजु. ३२।६।।

भावार्थ- जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य आदि भूमि का धारण , जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण और जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष का धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकांतरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।६।।

ऋ.१०।१२१।१०।।

भावार्थ- हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! आपसे भिन्न दूसरा कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और वांछा करें उस-उस की कामना सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।। ७ ।।

यजु. ३२।१०।।

भावार्थ- हे मनुष्यो ! वह परमात्मा अपने लोगों का भ्राता के समान

सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कामों को पूर्ण करनेवाला संपूर्ण लोकमात्र और नाम, स्थान, जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख-दुःख से रहित, नित्यानंदयुक्त, मोक्षस्वरूप, धारण करनेवाले परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। हम सब लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।८।।

यजु. ४०।१६।।

भावार्थ- हे स्वप्रकाशस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् को प्रकाशित करनेवाले, सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे संपूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा संपूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइए। और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनंद में रहें।

अग्न्याधान

निम्न मंत्र का उच्चारण करके घृत के दीपक से कर्पूर सिलगाकर उससे अग्नि प्रज्वलित करें।

ओं भूर्भुवः स्वः। गोभिल गृह्य. १-१-१

निम्न मंत्र कहते हुए सिलगाई हुई अग्नि यज्ञकुंड में रखें।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽअग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।। यजु. ३.५।।

निम्न मंत्र कहते हुए अग्नि प्रदीप्त करें।

ओम् उद्बुधस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ्सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

यजु.१५, ५४ ।।

समिदाधान

निम्न मंत्रों से एक-एक समिधा यज्ञकुंड में रखें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।। इससे पहली समिधा

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।२।। यजु.३।१।।
ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम।। ३ ।। यजु.३-२ ।।

इन दोनों मंत्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम।। ४ ।।

इस मंत्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें। यजु. ३।३।।

इसके पश्चात् निम्न मंत्र पाँच बार कहते हुए घृत की पाँच आहुतियाँ दें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।।

जलप्रसेचन

तदनंतर अंजलि में जल लेकर निम्न मंत्रों से वेदी के चारों दिशाओं में जल छोड़ें।

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व।।१।। इस मंत्र से पूर्व में (दक्षिण से उत्तर की ओर)

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।। २ ।। इस मंत्र से पश्चिम में (दक्षिण से

उत्तर की ओर)

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। ३ ।। गो.गृ.१।३।१-३।। इस मंत्र से उत्तर में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।४।। यजु. ३०।१।। इस मंत्र से दक्षिण में पूर्व से आरंभ करके कुंड की सभी दिशाओं में।

आघारावाज्यभागाहुति

ओम् अग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।१।।यजु. २२।२७।।

इस मंत्र से कुंड के उत्तर भाग में,

ओं सोमाय स्वाहा।। इदं सोमाय - इदन्न मम।।२।।

गो.गृ.१।८।२४।।

इस मंत्र से कुंड के दक्षिण भाग में

ओं प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।। यजु.२३।३२।।

ओं इन्द्राय स्वाहा।। इदमिन्द्राय-इदन्न मम।। २ ।। यजु.२२।२७।।

इन दो मंत्रों से वेदी के मध्य भाग में दो आहुतियाँ दें।

तत्पश्चात् निम्न मंत्रों से घृत की चार आहुतियाँ दें।

व्याहृत्याहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

इसके पश्चात् अष्टाज्याहुतियाँ दें।

अष्टाज्याहुति

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्याम्–इदन्न मम ।। १ ।। ऋ. ४।१।४।।

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ।अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ।। २ ।। ऋ.४।१।५।।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम ।। ३ ।। ऋ.१।२५।१९।।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम।।४।। ऋ. १।२४।११।।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। ते-भिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः - इदन्न मम ।। ५ ।। कात्यायन श्रौत. २५।१।१०।।

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा।। इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ।। ६ ।। कात्या. श्रौ. २५-१।११।।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा।। इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च - इदन्न मम ।। ७ ।। ऋ. १।२४।१५।।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञँहिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा।। इदं जातवेदोभ्याम्-इदन्न मम।। ८।। यजु.५।३।।

प्रधान होम

प्रधान होम करते समय वधू अपना दाया हाथ वर के दाएँ कंधे पर रखें। **वर** निम्न मंत्रों से घृत की पाँच आहुतियाँ दें।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम।।१।।

ऋ ९।६६।१९।।

ओंभूर्भुवः स्वः। अग्निऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम।। २ ।।

ऋ. ९।६६।२०।।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम।। ३ ।।

ऋ. ९।६६।२१।।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यनो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।। ४ ।। ऋ.१०।१२१।१०।।

ओं भूर्भुवः स्वः। त्वर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि अंजन्ति मित्रं न सुधितं गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।५।।

इसके पश्चात् राष्ट्रभृत होम आरंभ करें।

राष्ट्रभृत होम

विवेचन- गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने पर नवविवाहितों को अनेक प्रकार के कर्तव्य करने होते हैं। प्रत्येक गृहस्थी का कर्तव्य होता है कि वह राष्ट्र का भरण-पोषण करते हुए राष्ट्र को दृढ़, शक्तिशाली और समुन्नत बनाएँ। राष्ट्रभृत यज्ञ के मंत्रों में अग्नि, सूर्य, चंद्र, वायु, यज्ञ और मन को गंधर्व कहा गया है। ये सभी इस विश्व को अलग-अलग रूपों में धारण करते हैं।

इन मंत्रों में ऐसी प्रार्थना की गई है कि ये समस्त पदार्थ हमारी ब्राह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति का रक्षण करें। बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति ही ब्राह्मशक्ति है। शारीरिक और आधिभौतिक शक्ति ही क्षात्रशक्ति है। ब्राह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति से ही समाज तथा राष्ट्र बलवान और स्थिर रहता है।

ओम् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्।। इदमृताषाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय -इदन्न मम।।१।।

ओम् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयो ऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यः स्वाहा।। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः-इदन्न मम।।२।।

ओं सँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्।। इदं सँहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय -इदन्न मम।।३।।

ओं सँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। ताभ्यः स्वाहा।। इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः-इदन्न मम।।४।।

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्।। इदं सुषुम्नाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय-इदन्न मम।।५।।

ओं सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। ताभ्यः स्वाहा।। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः -इदन्न मम।।६।।

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं

पातु तस्मै स्वाहा वाट्।।इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय-इदन्न मम।।७।।

ओम् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्ज्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा।।इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यऽऊग्भ्र्यः-इदन्न मम।।८।।

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्।।इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय-इदन्न मम।।९।।

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा।। इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः -इदन्न मम।।१०।।

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्।। इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय -इदन्न मम।।११।।

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। ताभ्यः स्वाहा।। इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः-इदन्न मम।।१२।।

जयाहोम

विवेचन- हमारा जीवन यशस्वी होने के लिए जयाहोम किया जाता है। इसमें चित्त, चेतनाशक्ति, सत्यासत्यविवेक, संकल्प, संकल्पशक्ति, विज्ञान, मन, इंद्रियाँ, अमावस्या और पौर्णिमा के संबंध में क्रियाएँ हैं। गौरव, उत्तम शरीर आदि की प्राप्ति के लिए शुभ संकल्प से इस शक्ति का आवाहन करते हुए आहुतियाँ दी जाती हैं। ये हमारे लिए लाभदायक हों ऐसी प्रार्थनाएँ इन मंत्रों हैं। वैयक्तिक उन्नति और राष्ट्र की उन्नति इन दोनों से ही व्यक्ति का जीवन सफल होता है।

ओं चित्तं च स्वाहा।। इदं चित्ताय-इदन्न मम।।१।।

ओं चित्तिश्च स्वाहा।। इदं चित्त्यै-इदन्न मम।।२।।

ओम् आकूतं च स्वाहा।। इदमाकूताय-इदन्न मम ।।३।।

ओम् आकूतिश्च स्वाहा।। इदमाकूत्यै-इदन्न मम।।४।।

ओं विज्ञातं च स्वाहा।। इदं विज्ञाताय-इदन्न मम ५।।

ओं विज्ञातिश्च स्वाहा।। इदं विज्ञात्यै-इदन्न मम।।६।।

ओं मनश्च स्वाहा।। इदं मनसे-इदन्न मम।।७।।

ओं शक्वरीश्च स्वाहा।। इदं शक्वरीभ्यः-इदन्न मम।।८।।

ओं दर्शश्च स्वाहा।। इदं दर्शाय-इदन्न मम।।९।।

ओं पौर्णमासं च स्वाहा।। इदं पौर्णमासाय-इदन्न मम।।१०।।

ओं बृहच्च स्वाहा।। इदं बृहते-इदन्न मम।।११।।

ओं रथन्तरं च स्वाहा।। इदं रथन्तराय-इदन्न मम।।१२।।

ओ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णो प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु। तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा।। इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय-इदन्न मम।।१३।।

अभ्यातन होम

विवेचन- व्यक्ति का सर्व प्रकार का विकास होने के लिए यह यज्ञ किया जाता है। इन मंत्रों में प्रार्थना की गई है कि विश्व के देवता अग्नि, इंद्र, वायु, सूर्य, चंद्र, समुद्र आदि देवता, शक्तियाँ, पदार्थ, साथ ही परिवार के समस्त संबंधी जन, इष्ट मित्रादि, बंधु-बांधव हमारे रक्षक, प्रेरक और मार्गदर्शक बनें। व्यक्ति के विकास में ही राष्ट्र का विकास समाया हुआ है। राष्ट्र के नागरिक बलशाली तथा चारित्र्यवान बनने पर ही राष्ट्र बलशाली व विकसित होगा।

ओम् अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा।।

इदमग्नये भूतानामधिपतये-इदन्न मम।।१।।

ओम् इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामातशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये-इदन्न मम।।२।।

ओं यमः पृथिव्याऽ अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये-इदन्न मम।।३।।

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये-इदन्न मम।।४।।

ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये-इदन्न मम।।५।।

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये-इदन्न मम।।६।।

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये-इदन्न मम।।७।।

ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं मित्राय सत्यानामधिपतये-इदन्न मम।।८।।

ओं वरुणोऽपापमधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्

क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं वरुणायापामधिपतये-इदन्न मम।।९।।

ओं समुद्रः स्त्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं समुद्राय स्त्रोत्यानामधिपतये-इदन्न मम।।१०।।

ओम् अन्न ँसाम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा। इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये-इदन्न मम ।।११।।

ओं सोमऽओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं सोमाय ओषधीनामधिपतये-इदन्न मम।।१२।।

ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये-इदन्न मम।।१३।।

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं रुद्राय पशूनामधिपतये-इदन्न मम।।१४।।

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये-इदन्न मम।।१५।।

ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये-इदन्न मम।।१६।।

ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः-इदन्न मम।।१७।।

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्या ँ स्वाहा।। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च-इदन्न मम।।१८।।

दुःखविमोचन होम

विवेचन- इस होम के मंत्रों में ये भावनाएँ व्यक्त की गई हैं कि यह मेरी पत्नी उत्तम पुत्रवती हो। पुत्र से संबंधित कोई दुःख इसे न हो। इसकी कोख पुत्ररहित न रहे। अर्थात् इसमें वंध्यत्वदोष निर्माण न हो। इसकी संतान दीर्घायुषी बनें। जिससे इसे पुत्रप्राप्ति का आनंद होवें। ईश्वर की कृपा से हमारे घर में रात्री के समय कोई दुःख का शब्द सुनाई न दें।

इस होम में निम्न मंत्रों से घृत की आहुतियाँ दें।

ओम् अग्निरैतु प्रथमो देवतानाँ सोऽस्यै प्रजां मुंचतु मृत्युपाशात्। तदयँ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयँ स्त्री पौत्रमघन्न रोदात् स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।१।।

ओम् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियँ स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।२।।

ओं स्वस्ति नोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र। यदस्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रँ स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।३।।

ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽ आयुः ।

अपैत मृत्युरमृतं म आगाद् वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा।। इदं वैवस्वताय-इदन्न मम।।४।।

ओं परं मृत्योऽअनु परेहि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाँ रीरिषो मात वीरान्त्स्वाहा।। इदं मृत्यवे-इदन्न मम।।५।।

ओं द्यौस्ते पृष्ठँ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च। स्तन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वेदेवा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा।। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः-इदन्न मम।।६।।

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्त्थादन्यत्रत्वद् रुदत्यः संविशन्तु। मा त्वँ रुदत्युरऽआवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजा सुमनस्यमानाँ स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।७।।

ओम् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपाप्मानमुत वाऽअघम।शीर्ष्णः स्त्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुंचामि पाशँ स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।८।।

इसके पश्चात् व्याहृतिमंत्रों से चार आहुतियाँ देवें।

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

पाणिग्रहण

वर अपने आसन से उठकर वधू के सामने पश्चिमाभिमुख खड़े होकर बाएँ हाथ से वधू का दाया हाथ पकड़कर ऊपर उठाएँ। दाएँ हाथ की

हथेली से वधू की ऊपर उठाई हुई हथेली पकड़कर आगे के छः मंत्र कहें-

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।१।।
ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव।।२।।
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम्।।३।।
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया।।४।।
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु।।५।।
अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन् मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्।।६।।

भावार्थ- हे देवी! ऐश्वर्य की प्राप्ति, सुसंतान की प्राप्ति तथा सौभाग्यवृद्धि के लिए मैं तेरा हाथ अपने हाथों में ले रहा हूँ। तू वृद्धावस्था तक मेरे साथ सुख से रहे। संसार के उत्पादक परमात्मा ने और विवाहमंडप में विराजित विद्वान लोगों ने तुझे गृहस्थाश्रम के लिए मुझे दे दिया है।।१।।

हे देवी! मैं ऐश्वर्यशाली और धर्ममार्ग में प्रवृत्त रहता हुआ तेरा हाथ ग्रहण कर रहा हूँ। तू धर्म से मेरी पत्नी है और मैं धर्म से तेरा गृहपति हूँ।।२।।

हे अनघे! तुझे परमात्मा ने मुझे दिया है। मेरा भरण-पोषण करने के लिए तू योग्य पत्नी है। तू मेरे साथ सुखपूर्वक सौ वर्ष जीने की कामना करती हुई उत्तम संतानवती होकर जीवन धारण कर।।३।।

हे वरानने! परमात्मा की इस सृष्टि में हम ज्ञानी जनों जैसा अपना जीवन व्यतीत करेंगे। तू सुंदर वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर बादलों में

चमकनेवाली विद्युत जैसी बनकर मेरे चित्त को प्रसन्न कर। परमेश्वर तुझे प्रजा से युक्त करके संतान देवें। मैं तुझे सूर्यकिरणों के समान वस्त्राभूषणों से सुशोभित रखूँगा।।४।।

हम सदैव आनंद, ऐश्वर्य और प्रजावृद्धि करेंगे। दोनों परस्पर मिलकर गृहस्थाश्रम सुखी व संपन्न करेंगे।।५।।

हे कल्याणी ! कुल की वृद्धि देखनेवाला मैं तेरे रूप को प्राप्त होता हूँ। अर्थात् तेरे रूप में मैं अपना रूप देखता हूँ। तू भी प्रेमपूर्वक मुझमें विलीन होकर मेरे अनुकूल व्यवहार कर। मैं मन से भी तुझसे चोरी का आचरण नहीं करूँगा अर्थात् कुछ भी छुपाकर नहीं रखूँगा। पुरुषार्थ से शिथिल होने पर भी मैं संकटों को दूर करूँगा। तू भी मेरे साथ ऐसा ही आचरण कर।।६।।

विवेचन- संस्कृत में हाथ को 'पाणि' कहते हैं। पाणिग्रहण करना अर्थात् हाथ हाथों में लेना, हाथ पकड़ना, (हस्तबंध), स्वीकार करना। शायद 'हस्तबंध' से ही अंग्रेजी में 'हसबंड' शब्द बना है। गृहस्थजीवन की देहलीज पर ठहरे हुए वर-वधू को जीवन का ज्ञान होना, संभवनीय समस्याओं का स्वरूप ध्यान में आना अत्यावश्यक है। संसारसागर में आँधियों का स्वरूप और उसे पार करने का उपाय यदि पहले ही बता दिया जाए या मालूम हो तो दोनों की जीवननौका आनंदपूर्वक , शांतिपूर्वक भवसागर पार करेगी।

केवल वाग्दान हुआ और पाणिग्रहण हुआ नहीं, अथवा पाणिग्रहण हुआ और वाग्दान हुआ नहीं, तो ऐसी अवस्था में स्त्री-पुरुष का संबंध अनैतिक और अवैध माना जाता है। अतः वाग्दान के साथ पाणिग्रहण की विधि होने पर ही कन्या गृहिणीपद को तथा वर गृहस्थीपद को प्राप्त होता है।

वस्तुतः ये प्रतिज्ञाएँ गृहस्थाश्रम में प्राण भरनेवाली हैं। गृहस्थाश्रम में परस्पर विचारविमर्श न होने से, एक-दूसरे के प्रति प्रामाणिक न रहने से क्लेश उठाने पड़ते हैं।

यज्ञकुंड की परिक्रमा

पाणिग्रहण के छः मंत्र कहने पर **वर वधू** का हाथ पकड़कर उसे उठावें और **दोनों** यज्ञकुंड की परिक्रमा कर पूर्वानुसार अपने आसन पर बैठें। इस समय कलश लेकर बैठा हुआ पुरुष कलश कंधे पर लेकर वधू-वर के पीछे चलें। पश्चात् वधू- वर निम्न मंत्रों से प्रतिज्ञा करें।

प्रतिज्ञामंत्र

ओम् अमोऽहमस्मि सा त्वँ सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतम्।। पार.१।६।३

भावार्थ- हे वधू ! मैं ज्ञानपूर्वक तेरा हाथ ग्रहण कर रहा हूँ। तू भी वैसे ही ज्ञानपूर्वक मेरा हाथ ग्रहण कर। मैं सामवेद के समान हूँ, तू ऋग्वेद के समान है। तू पृथ्वीसमान है और मैं सूर्यसमान हूँ। हम प्रसन्नतापूर्वक विवाह करेंगे। हम दोनों उत्तम संतानों को जन्म देंगे। ये संतानें वृद्धावस्था तक जीवनयुक्त रहकर उत्तम प्रकार से एक-दूसरे से प्रसन्न, रुचियुक्त, शुभ मन से, सौ वर्ष जीवन बितानेवाली, एक-दूसरे को प्रेम से देखनेवाली तथा प्रिय वचन कहनेवाली होंगी।

शिलारोहण

इसके पश्चात् वधू का भाई दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठा के शिला पर रखें। उस समय वर कहें-

ओम् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वँ स्थिरा भव।

अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः।।१।। पार. १।७।१

–हे देवी ! तू इस शिला पर चढ़ और धर्मकार्यों में शिलासमान दृढ़ बन। यह शिला जिस प्रकार मुसलाधार वर्षा में, तूफान के आघात को भी

सहकर स्थिर रहती है, उसी प्रकार तू भी गृहस्थजीवन में कभी बुरे प्रसंग या संकट आने पर स्थिर रह।

विवेचन- शिला कठोरता और दृढ़ता का प्रतीक है। जब कोई किसी के पग को पकड़ता है तब उसकी आबरू जिसके पैर पकड़े जाते हैं, उसके हाथ में होती है। वधू का भाई वधू से कहता है कि, देख! तेरे जीवन में अनेक समस्याएँ आएँगी। दो भिन्न परिवारों में बढ़े हुए दो जीवों को एकत्र रहना है और समरस होना है। तब तू इस शिला के समान स्थिरवृत्ति से अविचल बन। तेरे भावी जीवन में हमारे परिवार की प्रतिष्ठा को बनाए रख। मेरे परिवार का शील और श्रेष्ठत्व यह पूर्णतः तेरे आचरण पर निर्भर है। सास-श्वशुर, ननद-भावज, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी तथा अन्यों से संबंध आते रहते हैं। ये सभी लोग तेरी त्रुटियों पर उपहास करेंगे, इससे तुझे मानसिक क्लेश होगा। इन सभी मानसिक व शारीरिक क्लेशों को सहते हुए पति के स्वभाव और गुणों में समरस होने का कठिन कार्य तुझे निभाना है। सदाचरण, सेवाभाव और मधुर वाणी से सबका स्नेह और सहानुभूति तुझे प्राप्त करनी है। समस्त समस्याओं का धैर्य से सामना करना है। अतः भयभीत न हो, स्थिर रह। तू आज पिता के घर से जा रही है। अब मेरा दायित्व प्रारंभ हो रहा है। तू जब-जब घर आएगी, तब-तब मैं मेरी पवित्र कमाई से तेरी अंजली भरते रहूँगा।

लाजाहोम

इसके पश्चात् वधू अपनी अंजली वर की अंजली में धरें। उनके पीछे वधू की माता या भाई शमी के पत्ते मिलाए हुए लाजा का सूप लेकर ठहरें। भाई अपने दाएँ हाथ से दो बार सूप में से थोड़ी-थोड़ी लाजाएँ लेकर वधू- वर की एकत्रित अंजली में डालें। उसपर थोड़ा घृत छोड़ें। तदनंतर वधू निम्न तीन मंत्रों को कहते हुए प्रत्येक मंत्र को एक अंजली इस प्रकार तीन बार वर की हस्तांजली सहित अपनी अंजली की लाजाएँ प्रज्वलित अग्नि में छोड़ें।

प्रथम परिक्रमा

ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा।। इदमर्यम्णे अग्नये-इदन्न मम।।१।।

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका।आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।२।।

ओम् इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव।मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियँ स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।।३।।

भावार्थ- इन मंत्रों द्वारा कन्या परमात्मा से प्रार्थना करती है कि, न्यायकारी, दिव्यरूप परमात्मा मुझे पितृकुल से छुड़ावे पर पतिकुल से अलग न करें। यज्ञ में लाजाहुति देते समय यह नारी कहती है कि, मेरा पति दीर्घायुषी होवें और मेरे परिवार के लोग धन-धान्य से संपन्न होवें।

हे पतिदेव ! आपकी समृद्धि के लिए ये लाजा अग्नि में छोड़ रही हूँ । मैं और आप प्रेम से रहेंगे। इसमें परमात्मा हमारा सहायक हों।

हस्तग्रहण

तत्पश्चात् **वर** वधू का हाथ पकड़कर निम्न मंत्र कहें।

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजनीवति।यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः।यस्यां भूतँ समभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।१।।

भावार्थ- हे ज्ञानवती, सौभाग्यवती, अन्नपूर्णे, देवी ! तू इस गृहस्थरूपी यज्ञ का समझदारी से रक्षण कर। पहले से ही विद्वान लोग जानते हैं कि, तू इन समस्त प्राणिमात्र की वास्तविक जननी है। मैं आज से तेरे उत्पादन सामर्थ्य की यशोगाथा(प्रजनन-गाथा) गाता रहूँगा।

तदनंतर **वर** निम्न मंत्र कहते हुए **वधूसह** यज्ञकुंड की परिक्रमा करें।

परिक्रमा ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।

पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह।।१।।

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट।

कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः।।२।।

भावार्थ- हे गृहस्थाश्रम के प्रेरक परमेश्वर ! तूने प्राजापत्यधर्म के पालनार्थ बनाई हुई उषासमान इस सुंदर कन्या का मैंने स्वीकार किया है। यह मेरे साथ रहकर गृहस्थधर्म का बोझ उठाएँ। प्रजनन सामर्थ्य से युक्त रही इसे कालांतर से पुत्रों सहित मुझे प्रदान कर।

यह कन्या पिता का घर छोड़कर पति के घर आ रही है। इस कन्या ने गृहस्थाश्रम का व्रत धारण कर लिया है। यह निरंतर मेरे साथ रहें। हम दोनों मिलकर जल के समान वेगवान रहनेवाले गृहसौख्य में विघ्न डालनेवाले विरोधी कर्मों को -विचारों को- दूर करें, नष्ट करें।

इस प्रकार लाजाहोम की पहली परिक्रमा पूर्ण हुई।

दूसरी व तीसरी परिक्रमा

पहली परिक्रमा के अनुसार ही फिर से उन्हीं मंत्रों को पढ़कर, लाजाहुति देकर, हाथ पकड़कर, कलशसहित दूसरी और तीसरी परिक्रमा पूर्ण करें।

चौथी परिक्रमा

पश्चात् सूप में शेष रही संपूर्ण लाजाएँ वधू के अंजली में डाले और **वधू** निम्न मंत्र कहते हुए आहुति देवें।

ओं भगाय स्वाहा। इदं भगाय-इदन्न मम।।

इस मंत्र को कहते हुए **कलशसहितयज्ञकुंड की प्रदक्षिणा** करें। पश्चात् **वर** निम्न मंत्र कहकर घृत की एक आहुति देवें।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।।

विवेचन- लाजाहोम में पति-पत्नी एकत्रित अंजली से लाजा, शमी के पत्ते तथा घृत की आहुतियाँ देते हैं। इसमें उद्देश्य यह है कि, इसके आगे दोनों मिलकर दान-धर्म करते रहें। इसमें लाजाएँ पति-पत्नी के प्रतीक मानी

जाती हैं। धान के छिलके में चावल रहते हैं। छिलके के साथ होने पर ही

धान की बुवाई से पौधा तैयार होता है। केवल चावल से या केवल छिलके से पौधा बनता नहीं। उसी प्रकार पति-पत्नी के एकरूप, एकसाथ रहने से ही प्रजा निर्माण होती है। इसलिए पुरुष सहधर्मिणी की प्रतिष्ठा करें। जब तक धान में चावल रहता है तब तक ही उसका मूल्य बना रहता है। धान से भूसा अलग करने पर भूसे का कोई मूल्य रहता नहीं। तद्वत प्रजनन के लिए पत्नी आवश्यक है। स्त्री जब तक पति के साथ रहती है, तब तक उसकी शोभा, उसका आदर रहता है। पति से पत्नी अलग होने पर उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती।

इसका दूसरा भाव यह है कि, धान की पैदावार बढ़ाने के लिए प्रथम धान का पौधा तैयार करते हैं। तदनंतर उन पौधों को उखाड़कर अन्य स्थान पर लगाते हैं। कन्या का जीवन भी ऐसा ही है। प्रथम वह माता-पिता के घर जन्म लेती है। विवाह होने पर वह पति के घर जाती है। उसके कारण ही पतिगृह की समृद्धि बढ़ती है। शमी के पत्तों की यह विशेषता है कि, वे संयुक्त (जुड़े हुए) होते हैं। ये पत्ते सूखने पर भी हरे ही रहते हैं। उसी प्रकार पति-पत्नी का जीवन भी सदा लहलहाता, प्रफुल्लित व संयुक्त -एकत्रित- रहे। अंतिम मंत्र में वधू परमेश्वर से प्रार्थना करती है कि, हे परमेश्वर ! मुझे पतिकुल से विभक्त मत करो। मेरे पतिदेव आयुष्मान होवें। मेरे परिवार व आप्तेष्ट जन समृद्ध होवें। परमात्मा हमें सहायक होवें।

इस विधि में वधू-वर यज्ञ की चार परिक्रमाएँ करते हैं। इसका यह भाव है कि, ये दोनों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति करें। गृहस्थाश्रम की कीर्ती चारों दिशाओं में व्यापक फैलें। ये परिक्रमाएँ चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रम की निष्ठा के प्रतीक हैं।

केशमोचन

तदनंतर एकान्त में जाकर वर वधू के केशों को खोलकर कहें-

ओं प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात्सविता

सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि।।१।।

ओं प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति।।२।। ऋ.१०।८५।२४,२५

भावार्थ- हे वधू! आज तक तू माता-पिता की ममता, मोह में लिपटी थी। आज मैं तेरे केशों को खोलकर तुझे माता-पिता के बंधन से, मोह से मुक्त करता हूँ। आज से तेरे माता-पिता के स्थान में तेरे सास-ससूर हैं। मेरे माता-पिता को ही अपने माता-पिता समझ। अब तू मायके के मोह में उलझते मत रह। तू उस मोहजाल से दूर रह। तू अपने में धैर्य निर्माण कर। मैं तुझे मेरा कुल छोड़ने जैसा कोई भी कारण उपस्थित होने नहीं दूँगा। मैं तेरे केशों को खोलकर आज से तुझे साज-शृंगार करने का अधिकार दे रहा हूँ।

ग्रंथिबंधन

अब **पुरोहित** या कोई **सौभाग्यवती स्त्री** वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ दे दें। यह ग्रंथिबंधन या जोड़ा है।

विवेचन - वस्त्रों की यह गाँठ वधू-वर के भावी जीवन के लिए उनके हृदयों को एकत्र बंधा हुआ बंधन है। अब वधू-वरों के आचार, विचार, अंतःकरण व हृदय एक हुए हैं। दोनों का संबंध अटूट बना हुआ है। एक को काँटा चुभा तो दूसरे की आँखों में आँसू आने चाहिए। वैदिक धर्म में विवाहविच्छेद का उल्लेख नहीं है। इस विधि के द्वारा आज से वर और वधू का संबंध अखंडित हुआ है, एक हुआ है। अब जिस हेतु से उन्हें सात कदम चलना है, वह लक्ष्य अकेला पुरुष या अकेली स्त्री पूरा कर नहीं सकती। अतः एक-दूसरे के सहयोगी बनकर ही गृहस्थरूपी जीवनमार्ग पर दृढ़ता केसाथ कदम रखें इसलिए यह ग्रंथिबंधन है।

सप्तपदी

ग्रंथिबंधन के पश्चात् वधू- वर अपने आसनों से उठकर, वर अपने दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़कर यज्ञकुंड के उत्तरभाग

में समीप-समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें। तत्पश्चात् **वर** अपना दक्षिण हाथ

वधू के दक्षिण कंधे पर रखें और निम्न छः मंत्र कहते हुए एक मंत्र से एक पग इस प्रकार वधू के साथ सात कदम चलें। प्रथम दक्षिण पग उठाकर आगे रखें। तदनंतर बाएँ पैर को उठाकर दाएँ पैर के थोड़ा-सा पीछे रखें।तत्पश्चात् **वर** निम्न वाक्य कहते हुए वधू को उसका दक्षिण पग उठाकर चलने के लिए आज्ञा देवे।

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम।। गोभिल २।२।१२

–हे वधू! तू बाएँ पग से दाएँ पग का उल्लंघन मत कर। अर्थात् तेरा दक्षिण पग आगे रख। हमें भावी जीवन में समस्त कार्य सीधे अर्थात् अच्छे करने हैं। तू धर्ममार्ग से सीधे चल। वाममार्ग, कुटिल व उलटे मार्ग से मत चल।

वर निम्न मंत्र कहते हुए वधू के साथ ईशान दिशा में एक-एक पग चलें और चलावें।

ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।१।। पहला पग

ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।२।। दूसरा पग

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।३।। तीसरा पग

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।४।। चौथा पग

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।५।। पाँचवाँ पग

ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।६।। छठा पग

ओं सखे सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु

पुत्रान् विन्दावह बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।।७।। सातवाँ पग

भावार्थ-हे अन्नपूर्णे! अन्नप्राप्ति के लिए पहला पग उठा।

हे सबले! बलप्राप्ति के लिए दूसरा पग उठा।

हे सौभाग्यशालिनी! धन-धान्यादि की समृद्धि के लिए तीसरा पग उठा।

हे सुखदे! सुखप्राप्ति के लिए चौथा पग उठा।

हे प्रजावती! संतान के लिए पाँचवाँ पग उठा।

हे आरोग्यवती! ऋतुओं की अनुकूलता के लिए तथा स्वास्थ्यप्राप्ति के लिए छठा पग उठा।

हे जीवनसखी! प्रगाढ़ प्रेम, पारस्परिक प्रसन्नता और मित्रता के लिए सातवाँ पग उठा। तू मेरे व्रतानुकूल चलनेवाली हो। परमेश्वर तेरा मार्गदर्शक होवें। ईश्वरकृपा से हम अधिक पुत्रों को प्राप्त करें और वे समस्त दीर्घजीवी होवें।

विवेचन- सप्तपदी यह विवाहसंस्कार का अंतिम, पर अति महत्वपूर्ण पड़ाव है। यह विधि पूर्णतः संपन्न होने पर ही धार्मिक तथा वैधानिक दृष्टि से विवाह पूर्ण माना जाता है।

अन्न तथा धनादि के विना गृहस्थाश्रम का निर्वाह नहीं हो सकता। परिवार का भरण-पोषण, अतिथिसत्कार तथा अन्य धार्मिक कार्यों के लिए धनादि की प्राप्ति आवश्यक है। पर यह धन न्याय मार्ग से प्राप्त करें। शरीर की उपेक्षा करके धन प्राप्त नहीं करना चाहिए। पति के व्रतानुसार पत्नी चलें इसका अर्थ पति का जो धर्मानुसार आचरण है, उसपर चलें। पत्नी पति की किसी भी पापाचरण की आज्ञा को न मानें अथवा पापाचरण का साथ न दें।

गृहस्थजीवन में पति और पत्नी दोनों को बल की उपासना करनी चाहिए। कारण शारीरिक बल के विना गहस्थजीवन सुखी नहीं हो सकता।

सुखोपभोग यह गृहस्थी का प्राण है। दोनों मिलकर सदोदित ज्ञानप्राप्ति, सत्कार्य के लिए दान और अनन्य ईश्वरभक्ति करते रहें।

संतानप्राप्ति यह गृहस्थजीवन का प्रमुख उद्देश्य है। वंशसातत्य के लिए, कुलधर्म की परंपरा आगे चलाने के लिए तथा वृद्धावस्था में सहारे के लिए संतान का होना अति आवश्यक है। निपुत्रिकों का जीवन अतिशय कष्टमय रहता है। सप्तपदी के प्रत्येक मंत्र में **पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।** यह पद आ गया है। यहाँ 'बहून्' का अर्थ 'एक से अधिक' ऐसा समझें। दर्जनों जैसा अर्थ न करें। संरक्षणक्षम, पोषणक्षम तथा समृद्ध होने पर ही अधिक संतान की अपेक्षा रखें। मंत्रों में अन्न, बल, ऐश्वर्य ओर सुख के पश्चात् ही 'प्रजाभ्यः' शब्द आया है। संतान के संबंध में संयम का ही पाठ आचरण में लाना चाहिए। इसमें स्वास्थ्यरक्षण के लिए ऋतुमानानुसार योग्य आहार-विहार कर मन प्रसन्न तथा आनंदित रखने का संदेश है। गृहस्थजीवन में पति-पत्नी को एक-दूसरे का मित्र बनकर रहना चाहिए। स्त्री पाँव की जूती (दासी)नहीं बल्कि जीवनसखी है। गृहस्थरूपी रथ के दो पहियों में से वह एक पहिया है। पति-पत्नी का संबंध दास-दासी का नहीं बल्कि स्वामी- स्वामिनी का है। शतपथकार कहते हैं कि, धर्मपत्नी आत्मा का आधा भाग है। इसलिए उसे अर्धांगिनी, सहधर्मिणी, सहधर्मचारिणी कहा गया है। स्त्री पूजनीय, वंदनीय है। वह राष्ट्र को पुनीत करनेवाली धर्म की चल प्रतिमा है। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि, जिस कुल में स्त्री का यथोचित सत्कार होता है, वहाँ देवता आनंदोत्सव मनाते हैं। इसके विपरीत जहाँ स्त्री का अपमान, तिरस्कार होता है, वहाँ के कर्म निष्फल होते हैं। वहाँ सदा अशांति, असमाधान और दुःख की छाया रहती है। अतः वधू-वर सप्तपदी की सात सूचनाओं को ध्यान में रखकर चलेंगे तो उनका जीवन निश्चित ही सुखमय और समृद्ध होगा।

ईशान दिशा की ओर चलने का भाव यह है कि, गणित की अंकरेखा पर ईशान के अंक धन होते हैं। अतः वर-वधू को अपने धन,

यश, बल, ज्ञान, चारित्र्य आदि समस्त विषयों में जोड़ (वृद्धि) करते रहना चाहिए। भावी जीवनमार्ग सुखमय बनाने के लिए सात पग मिलकर चलना है। अर्थात् उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर बढ़ना है। सुखी, आनंदी और व्यवस्थित परिवार ही स्वर्ग है, तो एक दुःखी, असमाधानी और अव्यवस्थित परिवार ही नरक है।

सप्तपदी का राष्ट्रीय संदेश

१) राष्ट्र में विपुल धन-धान्य हो। २) राष्ट्र का संरक्षक दल शक्तिशाली हो। ३) राष्ट्र में धन, वस्तुएँ, पशु, शिक्षा आदि का प्रबंध उत्तम हो। ४)राष्ट्र की प्रजा सुखी, संतुष्ट, आस्तिक, धार्मिक, देश व संस्कृति के प्रति निष्ठावान हो। ५) देश में उत्तम, सदाचारी, श्रेष्ठ, बलशाली तथा उत्साही युवक और युवतियाँ हों। ६) देश के आवास, पर्यटन, स्वास्थ्य विभाग जागृत और कर्तव्यपरायण हों। ७) एक- दूसरे के प्रति प्रेमभाव, भ्रातृभाव एकता और द्वेषरहित उत्तम विचार हों।

प्रत्येक विवाहित दम्पती को इन राष्ट्रीय भावनाओं का ध्यान रहा तो राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निश्चित ही होगा।

मस्तक पर जल के छींटे

इसके पश्चात् यज्ञकुंड के दक्षिण भाग में कलश लेकर बैठा हुआ पुरुष वर-वधू के समीप आवें और कलश से थोड़ा-सा जल लेकर वर-वधू के मस्तक पर छिड़कें। उस समय **वर** निम्न मंत्र कहें-

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन।महे रणाय चक्षसे।।१।।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।उशतीरिव मातरः।।२।।
तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।आपो जनयथा च नः।।३।।

ऋ. ३६।१४-१६

ओम् आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।४।।

पार. १।८।५

भावार्थ- यह जल शांति देनेवाला, बल-वीर्य को बढ़ानेवाला, समृद्धि का कारण और माता-पिता के समान कल्याण करनेवाला होवे। यह जल आरोग्यदायी और स्वास्थ्यकारक होवे।

विवेचन- वर-वधू को बहुत समय तक अग्नि के समीप बैठना पड़ता है। इस कारण उनका मस्तक गरम होता है। ऐसे समय जल छिड़ककर मस्तक हो शांत, शीतल किया जाता है। इसका दूसरा भाव यह भी है कि, गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए इस नव-दम्पती में कभी किसी कारण झगड़ा, कलह हुआ तो घर के वृद्ध एवं अनुभवी व्यक्ति शीतल जल की भाँति ठंडे दिमाग और मधुर वचनों से उनके कलह को शांत करने का प्रयत्न करें

इसके पश्चात् **वर-वधू** वहाँ से उठकर बाहर जाकर निम्न मंत्र कहते हुए सूर्य का अवलोकन करें।

सूर्यदर्शन

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ् शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।१।।

भावार्थ- हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू विद्वानों का हित करनेवाला, शुद्ध नेत्र के समान सबको दिखानेवाला, अनादि काल से सबको जाननेवाला है। तेरी कृपा से हम सौ वर्षों तक कहते, सुनते, देखते रहें। किसी के भी अधीन न रहकर स्वतंत्र रहें और सौ वर्षों से भी अधिक जीएँ तथा सूर्य के समान तेजस्वी बनें।

विवेचन- इस विधि में वर-वधू संकल्प करते है कि, हम सूर्य के समान अविश्रांत गति से आगे बढ़ते जाएँ। सूर्य बहुत ऊँचाई पर है। हमारा ध्येय भी ऊँचा, श्रेष्ठ रहे। सूर्य स्वयं पवित्र रहकर अन्यों को भी पवित्र करता है। उसी प्रकार हम भी स्वयं पवित्र रहकर हमारे संपर्क में आनेवालों को पवित्र बनाएँ। सूर्य का उदय और अस्त समय पर होता है। हम भी हमारे कार्य नियमित और समय पर करते रहें।

इसके पश्चात् **वर** अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण कंधे पर से लेकर वधू के हृदय को स्पर्श करते हुए निम्न मंत्र कहें -

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

भावार्थ- हे वधू! मैं तेरे अंतःकरण और आत्मा को मेरे कर्म के अनुकूल धारण करता हूँ। तेरा चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। मेरी वाणी को तू एकाग्रचित्त होकर ग्रहण कर। प्रजापालक परमेश्वर तुझको मेरे लिए नियुक्त करे।

तत्पश्चात् **वधू** भी अपना दक्षिण हाथ वर के हृदय पर रखकर उपरोक्त मंत्र **(ओं मम व्रते.....)** कहें।

भावार्थ- हे प्रियवर ! मैं आपके हृदय, आत्मा और अंतःकरण को अपने प्रिय आचरण-कर्म में धारण करती हूँ। आपका चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। आप एकाग्र होकर मेरी वाणी का सेवन सदा किया करें। आज से प्रजापति परमात्मा ने आपको मेरे अधीन किया है, वैसे मुझको भी आपके अधीन किया है। हम दोनों समस्त प्रकार के व्यभिचार,अप्रिय भावनादि का त्याग कर पतिव्रता और पत्नीव्रत होकर परस्पर प्रेमभाव से आनंद में रहें।

विवेचन-वैदिक विवाह यह एक प्रकार का उच्च कोटि का रजिस्टर विवाह ही है। यहाँ विवाहमंडप ही न्यायालय है। सबसे श्रेष्ठ न्यायाधीश परमात्मा और उसका प्रतिनिधि पुरोहित विद्यमान है। समारोह में सम्मिलित स्त्री-पुरुष साक्षी रूप में विद्यमान हैं। वर-वधू का हृदय ही उनका रजिस्टर(कागज) है। जिसमें विवाह से संबंधित सभी बातें अंकित हैं। अंगूठे के चिह्न के रूप में हृदयस्पर्श की क्रिया है। इस प्रकार वैदिक विवाह यह श्रेष्ठ और उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण है। न्यायालय में मौखिक वचन प्रामाणिक नहीं होता। उसे लेखबद्ध करके उसपर हस्ताक्षर करने

पड़ते हैं और अंगूठा लगाना पड़ता है। तब उसे वैधता आती है। उसी प्रकार प्रथम वाग्दान, तदनंतर संकल्पविधि में पाणिग्रहण अर्थात् एक ही समय में 'वाणी' और 'पाणि' का व्यवहार विवाहमंडप में होता है।

लोकाचारः मंगलसूत्रधारण

मंगलसूत्र धारण करना यह वेदशास्त्रानुमोदित नहीं है। अथवा आर्यों के इतिहास द्वारा भी यह प्रमाणित नहीं है। 'संस्कारविधि' में इसका उल्लेख नहीं है। तथापि दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र तथा गुजराथ राज्यों में प्रचलित लोकरूढ़ीनुसार सौभाग्यवती (विवाहित) स्त्रियाँ गले में सोने का मंगलसूत्र तथा पैर की उँगलियों में चाँदी के बिछुएँ पहनती हैं। विवाह के समय सौभाग्यालंकार के रूप में ये आभूषण स्वयं वर अपने हाथों द्वारा वधू को पहनाता है। साथ ही वधू की माँग में कुंकुम भरता है। सम्प्रति उत्तर के राज्यों में भी यह प्रथा तीव्र गति से फैल रही है।

वधू को आशीर्वाद देने की प्रार्थना

इसके पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ रखकर निम्न मंत्र कहते हुए विवाहमंडप में उपस्थित लोगों से वधू को आशीर्वाद देने की प्रार्थना करें।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन।। ऋ.१०।८५।३३

भावार्थ- हे उपस्थित सज्जनो! यह वधू मंगलस्वरूप है। इसपर आपकी कृपादृष्टि रहे। आप इसकी ओर मंगल कामना व पवित्र दृष्टि से देखिए। आप इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देकर ही अपने घरों को लौट जाएँ। पर जाते हुए परान्मुख होकर मत जाएँ, किन्तु पुत्रादि की मंगल कामना से फिर से लौट आने के उद्देश्य से जाइए।

आशीर्वाद

वर की प्रार्थना के पश्चात् उपस्थित लोग निम्न प्रकार से वर-वधू

को आशीर्वाद देवें।

ओं सौभाग्यमस्तु। ओं शुभं भवतु।।

–तुम्हारा सौभाग्य अखंड हो। परिवार में सब प्रकार का कल्याण हो।

तत्पश्चात् वर-वधू पहले जैसा यज्ञकुंड के समीप बैठकर निम्न स्विष्टकृत् आहुति और व्याहृति आहुतिया देवें।

स्विष्टकृत् आहुति

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम।।

आश्व. १।१०।२२, शतपथ ब्रा. १४।९।।

व्याहृति आहुतियाँ

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

इस प्रकार विवाह की पूर्व विधि समाप्त हुई। पश्चात् वर-वधू विश्राम करें।

विवाह की उत्तरविधि

थोड़ा-सा विश्राम करने के पश्चात् विवाह की उत्तरविधि प्रारंभ करें। यह विधि वधू के घर ईशान दिशा में पहले से बनाए हुए एक विशेष घर में करें।

सामान्य होम

सूर्यास्त होने पर आकाश में जब नक्षत्र दिखने लगे तब **वधू-वर** यज्ञकुंड के पश्चिम भाग में बैठे और अग्न्याधान करें।

अग्न्याधान

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।

तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽअग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।। यजु. ३.५।।

समिदाधान

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।। इससे पहली समिधा

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।

आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये-इदन्न मम।। २ ।। यजु.३।१।।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा।।

इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम।। ३ ।। यजु.३-२ ।।

इन दोनों मंत्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।

बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम।। ४ ।।

इस मंत्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें। यजु. ३।३।।

इसके पश्चात् निम्न मंत्र पाँच बार कहते हुए घृत की पाँच आहुतियाँ दें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।।

आघारावाज्यभागाहुति

ओम् अग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।१।। यजु. २२।२७।।

इस मंत्र से कुंड के उत्तर भाग में,

ओं सोमाय स्वाहा।। इदं सोमाय - इदन्न मम।।२ ।।

गो.गृ.१।८।२४।।

इस मंत्र से कुंड के दक्षिण भाग में

ओं प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।। यजु.२३।३२।।

ओं इन्द्राय स्वाहा।। इदमिन्द्राय-इदन्न मम।। २।। यजु.२२।२७।।

इन दो मंत्रों से वेदी के मध्य भाग में दो आहुतियाँ दें।

तत्पश्चात् निम्न मंत्रों से घृत की चार आहुतियाँ दें।

व्याहृत्याहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

प्रधान होम

इसके पश्चात् निम्न मंत्रों से आहुतियाँ देते हुए प्रधान होम करें।

ओं लेखासधिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।। इदं कन्यायै -इदन्न मम।।1।।

ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।। इदं कन्यायै -इदन्न मम।।2।

ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि ते

पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।। इदं कन्यायै-इदन्न मम।।3।।

ओम् आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।इदं कन्यायै-इदन्न मम।।4।।

ओम् ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।। इदं कन्यायै-इदन्न मम।।5।।

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्ववाहा।। इदं कन्यायै-इदन्न मम।।6।।

भावार्थ- हे कन्ये ! तेरे माथे की भौंओं की रेखासंधियों में, नेत्रों की पलकों में, नाभिरंध्रादि में जो दोष हैं, उन सभी को मैं उत्तम उपायों से दूर करूँगा। मेरी यह शुभ प्रार्थना सफल होवें। इस कन्या के शरीर की बाहर और भीतर की शुद्धि के लिए यह आहुति दे रहा हूँ। यह आहुति मेरे लिए नहीं है।

और जो तेरे केशों में दोष हैं, तेरे देखने-रोने में जो अनुचितता है, स्वभाव की बुरी आदतें, बोलने की तथा हँसी-मजाक की कुरूपता है, तेरे जबड़े, दाँत, हाथ-पैर आदि में जो टेढ़ापन है, तेरे दोनों कटिप्रदेश, योनिप्रदेश, जंघाएँ, टखने, घुटने आदि में तथा तेरे अन्य अवयवों में जो भी कोई भयानक विकार, दोष हों, उन सभीको मैं घृत के पूर्ण प्रयोग से दूर करने का निश्चय करता हूँ

(अग्निहोत्र से रोगों का शमन होता है और शरीर पुष्ट होता है। इसलिए वेद में कहा भी है- **यद्वाहिष्ठं तदग्नये।** ऋ.५।२५।७। अर्थात् जो पदार्थ अधिक उत्तम होते हैं, उन्हें अग्नि में अर्पित करना चाहिए।)

इसके पश्चात् चार व्याहृत्याहुतियाँ दें।

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

ध्रुव और अरुंधती-दर्शन

इसके पश्चात् वधू-वर उठकर बाहर जाएँ, और वधू को ध्रुव का तारा दिखलाते हुए **वर** कहें-

ध्रुवं पश्य। -ध्रुव-तारे को देख।

इसपर **वधू** वर से कहें-

पश्यामि। -मैं ध्रुव-तारे को देखती हूँ।

तदनंतर **वधू** कहें-

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य[1] असौ[2])।।

(१. 'अमुष्य' पद के स्थान में पति का नाम षष्ठी विभक्त्यन्त एकवचन में बोलें। २. 'असौ' पद के स्थान में वधू अपना नाम प्रथमा विभक्त्यन्त एकवचन में बोलें। जैसे- यदि पति का नाम वेदकुमार हो और पत्नी का नाम शुभदा हो तो पूरा मंत्र इस प्रकार बोलें- **ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासं वेदकुमारस्य शुभदाहम्।।**)

-हे ध्रुव तारे ! जैसा तू आकाश में अपने स्थान पर अटल है, उसी प्रकार .....[3] नामवाली मैं,.....[4] नाम के अपने पति के कुल में स्थिर होकर रहूँगी।

(३. यहाँ रिक्त स्थान में वधू अपना स्वयं का नाम उच्चारण करें।
४. यहाँ रिक्त स्थान में पति के नाम का उच्चारण करें।)

तदनंतर **वर** वधू को अरुंधती का तारा दिखलाते हुए कहें-

अरुन्धतीं पश्य। -अरुंधती तारे को देख।

इसपर **वधू** कहें- **पश्यामि।** -मैं देखती हूँ।

तत्पश्चात् **वधू** वर की ओर देखते हुए कहें-

ओम् अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि(अमुष्य[१] असौ[२])।।

हे अरुन्धती तारिके ! जिस प्रकार तू आकाश में वसिष्ठ नक्षत्र के पास सदा स्थिर रहती है, उसी प्रकार मैं........[३] नामवाली........[४] की पत्नी गृहस्थाश्रम में पति के समीप स्थिर रहूँगी अर्थात् पति के नियम-व्रतों में बंधी रहूँगी। (१से४ को पृ. ६४ अनुसार समझें।)

पश्चात् **वर** वधू के मस्तक पर हाथ धरके वधू की ओर देखकर कहें-

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्।।

ओं ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम्।।

–हे वरानने ! सूर्य की कांती विद्युत, सूर्यलोक या पृथिव्यादि में स्थिर है। भूमि अपने स्वरूप में स्थिर है। यह समस्त ब्रह्मांड प्रवाहरूप में स्थिर है। पर्वत अपनी स्थिति में स्थिर हैं। वैसे तू - मेरी पत्नी- , मेरे कुल में सदा स्थिर रह।

–हे सुमुखी ! धारण और पालन करने में समर्थ ऐसा मैं तेरा पति हूँ। मेरे पास तू स्थायी रह। परमेश्वर ने तुझे मेरे लिए अपने मन जैसा किया है। तू मेरे साथ उत्तम संतति से युक्त होकर सौ वर्षों का जीवन बिता।

इसके पश्चात् दोनों यज्ञकुंड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठकर तीन आचमन करें।

आचमन

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।। १ ।। इससे पहला आचमन

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।। २ ।। इससे दूसरा आचमन

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।।३।।इससे तीसरा आचमन

तत्पश्चात् घृत और स्थालीपाक(भात) तैयार कर लेवें। और निम्न मंत्रों से समिधा-होम करें।

समिधा-होम

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।। इससे पहली समिधा

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।२।। यजु.३।१।।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम।। ३ ।। यजु.३-२ ।।

इन दोनों मंत्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम।। ४।। यजु. ३।३।।

इस मंत्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इसके पश्चात् निम्न मंत्र पाँच बार कहते हुए घृत की पाँच आहुतियाँ दें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।। १।। आश्व.गृ.१।१०।१२।।

तदनंतर **आघारावाज्यभागाहुति** देवें।

ओम् अग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।१।।यजु. २२।२७।।

इस मंत्र से कुंड के उत्तर भाग में,

ओं सोमाय स्वाहा।।इदं सोमाय-इदन्न मम।।२।।

गो.गृ.१।८।२४।।

इस मंत्र से कुंड के दक्षिण भाग में

ओं प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।। यजु.२३।३२।।

ओं इन्द्राय स्वाहा।। इदमिन्द्राय-इदन्न मम।। २ ।। यजु. २२।२७।।

इन दो मंत्रों से वेदी के मध्य भाग में दो आहुतियाँ दें।

तत्पश्चात् निम्न मंत्रों से घृत की चार आहुतियाँ दें।

व्याहृत्याहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

भात का विशेष होम

इसके पश्चात् तैयार किए हुए भात को एक पात्र में निकालकर उसमें थोड़ा घी मिलाकर थोड़े-थोड़े भात से दोनों निम्न मंत्रों से आहुतियाँ दें।

ओं अग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।।

ओं प्रजापतये स्वाहा।। इदं प्रजापतये - इदन्न मम।।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यःस्वाहा।।इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः-इदन्न मम।।

ओम् अनुमतये स्वाहा।। इदमनुमतये - इदन्न मम।।

इसके पश्चात् एक **स्विष्टकृत्** आहुति देवें।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम।।आश्व.१।१०।२२,शतपथ ब्रा. १४।९।।

तदनंतर घृत से **व्याहृत्याहुतियाँ** और **अष्टाज्याहुतिया** दें

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा।। इदमग्नये - इदन्न मम।। १ ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा।। इदं वायवे-इदन्न मम ।। २ ।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा।। इदमादित्याय-इदन्न मम ।। ३ ।।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।। ४ ।। गो. १-८-१४।।

अष्टाज्याहुति

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ।। १ ।। ऋ. ४।१।४।।

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ।अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ।। २ ।। ऋ.४।१।५।।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम ।। ३ ।। ऋ.१।२५।१९।।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा।। इदं वरुणाय-इदन्न मम।।४।। ऋ. १।२४।११।।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। ते-भिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः - इदन्न मम ।। ५ ।। कात्यायन श्रौत. २५।१।१०।।

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि।

अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा।। इदमग्नये अयसे-

इदन्न मम ।। ६ ।। कात्या. श्रौ. २५-१।११।।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा।। इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च - इदन्न मम ।। ७ ।। ऋ. १।२४।१५।।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञँ्हिँ्सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा।। इदं जातवेदोभ्याम्-इदन्न मम।। ८।। यजु.५।३।।

वर-वधू का सहभोजन

इसके पश्चात् वर शेष रहे भात में घृत मिलाकर उसपर दाया हाथ रखकर निम्न मंत्रों का मन से जाप करके उसमें से थोड़ा-सा भात भक्षण करें और शेष रहा भात वधू को खाने के लिए दें।

ओम् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना।
बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते।।१।।
ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।
यदिदँ्हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।।२।।
ओम् अन्नं प्राणस्य षड्विँ्शस्तेन बध्नामि त्वा असौ।।३।।

('असौ' पद के स्थान पर वधू का नाम संबोधन एकचन में बोलें।)

भावार्थ- हे वधू! जिस प्रकार अन्न से प्राण का और प्राण से अन्न का तथा अन्न और प्राण का अंतरिक्ष से संबंध है, उसी प्रकार मैं तेरे हृदय, मन और चित्त को सत्य की गाँठ से बाँधता हूँ।

–हे पत्नी! यह जो तेरा अंतःकरण है, वह मेरे अंतःकरणसमान प्रिय होवें। वैसे ही यह जो मेरी आत्मा, मेरे प्राण और मेरा मन है, वह तेरी आत्मा, तेरे प्राण और तेरे मन जैसा सदा प्रिय रहे।

–अन्न, जो प्राणों का पोषण करनेवाला २६वाँ तत्व है, उससे मैं

तुझे दृढ़ प्रेम से बाँधता हूँ।

इसके पश्चात् वधू-वर यज्ञमंडप में शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें।

महावामदेव्यगान

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।।१।।

ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मँहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु।।२।।

ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतये।।३।।

महावामदेव्यम्

काऽ५या नश्चा३ यित्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः स। खा। औ३ होहायि। कया२३ शचायि। ष्ठचौहो३। हुमा२। वाऽ२र्तो३ऽ५हायि।।१।।

काऽ५स्त्वा) सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्ध। सा। औ३होहायि। दृढा२३ चिदा रुजौहो३। हुम्मा२। वाऽ३सो३ऽ५हायि।।२।।

आऽ५भी। षु णा३: सा३खीनाम्। आ। विता जरायि तृ। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३म्भवा। सियोहो३ हुम्मा२। ताऽ२ यो३ऽ५ हायि।।३।।

भावार्थ- सदोदित वृद्धि को प्राप्त होनेवाला, पूजनीय मित्र रहा हुआ परमात्मा, किससे हमारी रक्षा करता है? अर्थात् वह परमात्मा, सुख देनेवाले उत्तम बुद्धियुक्त व्यवहार से प्राप्त होता है और हमारी रक्षा करता है।।१।।

–अनेक आनंद का अत्युत्तम आनंदमय सत्यस्वरूप ऐसा कौन तुझे अंधकार से बाहर निकालकर आनंद देता है? अर्थात् वह परमात्मा, स्वास्थ्यरूपी औषधी देकर रोगों को नष्ट करके आनंद देता है।।२।।

–हे प्रभो! हमारे समवयस्क और वृद्ध हैं, उन सबके संबंध में हमारे मन में प्रेम की भावना है। उन्हें अनेक प्रकार के कष्टों में से गुजरना पड़ता है। आप उनका सैकड़ो प्रकार से रक्षण करते हैं।।३।।

विवाह की उत्तरविधि समाप्त।

अथ स्वस्तिवाचनम्

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ।।१।।
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ।।२।।
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ।।३।।
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वतये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।४।।
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।५।।
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।६।।
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ।।७।।
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।८।।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये।।९।।
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते
स्वस्तये।।१०।।
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ।।११।।
को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।।१२।।
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा
स्वस्तये।।१३।।
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वतये।।१४।।
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।१५।।
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।१६।।
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।।१७।।
अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये।।१८।।
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।

यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।१९।।
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये।।२०।।
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।।२१।।
स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ।।२२।।
इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशँ्सो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।।२३।।
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽ अपरीतास उद्भिदः
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।।२४।।
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाँ्रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाँ्सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।।२५।।
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।२६।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।२७।।
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।२८।।
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।२९।।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः देवेभिर्मानुषे जने ।।३०।।
ये त्रिशप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।३१।।

।।इति स्वस्तिवाचनम्।।

अथ शान्तिकरणम्

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।।१।।
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नःपुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।।२।।
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।।३।।
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं न सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः।।४।।
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं नो औषधीर्वनिनो भवन्तु शंन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।५।।
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ।।६।।
शं न सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ।।७।।
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।८।।
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।।९।।
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।।१०।।
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमुरातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः।११।।
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।१२।।
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः।।१३।।
इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।१४।।
शन्नो वातः पवताँ शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ।।१५।।
अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ।।१६।।
शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।१७।।
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।१८।।
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम
शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।१९।।
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२०।।
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२१।।
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।२२।।
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२३।।
यस्मिन्नृचः साम यजूँ्षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तँ् सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२४।।
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।२५।।
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शंराजन्नोषधीभ्यः ।।२६।।
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।।२७।।
अभयं मियादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।२८।।

।।इति शान्तिकरणम्।।

पिता की सीख

ससुर हों कि भर्तार के ज्येष्ठ भ्राता।
जिठानी हों या सास का जिनसे नाता।
उन्हें तू समझना पिता और माता।
कि सन्तोष हो तुझको हे मेरी जाता!

सुता देवरानी है सुत-तुल्य देवर।
यही तो है कुलवान कन्या का ज़ेवर।।

समझ लेंगी जब यूँ समझदार तुझको।
करेंगी वो माँ की तरह प्यार तुझको।
अगर आ गया उच्च व्यवहार तुझको।
बना देंगी घर-भर का मुखतार तुझको।।

बड़ा मान घर की अदालत करेगी।
जिठानी भी तेरी वकालत करेगी।।

है कर्त्तव्य तन-मन से स्वामी की सेवा।
कि है स्वामी-सेवा का फल मिष्ट मेवा।
न गङ्गा न यमुना न सरयू न रेवा।
मगर है यह मन्दाकिनी मुक्ति-देवा।।

पति को जो पूजेगी उद्धार होगा।
इसी घाट तेरा बेड़ा पार होगा।।

है जगदीश से प्रार्थना यह हमारी।
सुहागन रहे तू सदा हे दुलारी!
कटे शीलव्रत धारकर उम्र सारी।
सती गुणवती हो पति को हो प्यारी।।

बढ़े दम्पती प्रेम का ज्ञान निशिदिन।
रहे दो शरीरों में इक जान निशिदिन।।

- बेताब

(प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द के सौजन्य से)

श्री साखरे जी की ग्रंथसंपदा

मराठी

१) संध्योपासना
२) वैदिक विवाहपद्धतीवर एक दृष्टिक्षेप
३) अमृतवर्षा(वेदमंत्रांचा अनुवाद)
४) दैनिक पंचमहायज्ञविधी
५) वैदिक विवाहपद्धती
६) उपनयन, वेदारंभ व समावर्तनसंस्कार
७) भगवान जिह्वेश्वर सार
८) भगवान जिह्वेश्वर चित्रकथा
९) गर्भाधान,पुंसवन व सीमन्तोन्नयनसंस्कार (शीघ्र प्रकाश्य)
१०)अन्त्येष्टिकर्मविधी(शीघ्र प्रकाश्य)

हिंदी

१) संध्योपासना
२) विवाहसंस्कार की विशेषता
३) नरशार्दूल पं. नरेंद्रजी (तीन संस्करण)
४) दैनिक पंचमहायज्ञविधि
५) स्वधर्मसूर्य के आलोक में विश्व (मूल मराठी ग्रंथ'विश्वस्वधर्मसूर्ये पाहो' -विमला ठकार, का अनुवाद)
६) भगवान जिह्वेश्वर सार (सचित्र)
७) सुमति-प्रज्ञा (अप्रकाशित)
८) वैदिक विवाहसंस्कार
९)उपनयन, वेदारंभ व समावर्तनसंस्कार

कन्नड

१) अमृतवर्षा(वेदमंत्रानुवाद) (कन्नड-मराठी)
२) वैदिक विवाह विधी
३) भगवान जिह्वेश्वर चित्रकथा
४) भगवान जिह्वेश्वर सार

संदर्भ ग्रंथ

१) संस्कारविधि - महर्षि दयानंद सरस्वती
२) संस्कार चंद्रिका - डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
३) संस्कार समुच्चय - मदनमोहन विद्यासागर
४) संस्कारविधी (मराठी अनु.) - सत्यव्रत बी. कामदार व सौ. सुमित्रादेवी स. कामदार
५) संस्कार - भास्कर - स्वामी विद्यानंद सरस्वती
६) संस्कार - सन्देश - डॉ. सोमदेव शास्त्री
७) वैदिक विवाह पद्धति - स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

निकट विवाह करने में दोष तथा दूर विवाह करने में गुण

१) जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं, परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते, एक-दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और नंगे भी एक-दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।

२) जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र या पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

३) जैसे दूध में मिश्री वा शुण्ठ्यादि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है, वैसे ही भिन्न गोत्र, मातृ-पितृकुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

४) जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोगरहित होता है, वैसे ही दूरदेशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।

५) निकट सम्बन्ध करने में एक-दूसरे के निकट होने में सुख-दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूरदेशस्थों में नहीं। और दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।

६) दूर-दूर देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं। इसलिए विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट करने में नहीं।

७) कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है, क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आवेगी तब-तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा।

८) कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने-अपने पितृकुल के सहाय का घमंड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जाएगी। एक-दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी; क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है, इत्यादि कारणों से पिता एकगोत्र, माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं।

किस कुल में विवाह न करें?

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।

स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्।। ।।१।। मनु. (३।६)

चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाहसम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग करें।।१।।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।

क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च।।२।। मनु. (३।७)

जो कुल सत्क्रिया हे हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े-बड़े लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खाँसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त (हों उन) कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह होना न चाहिए। क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं, इसलिए उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिए।।२।।

किस अवस्था में विवाह न करें?

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि।

न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। मनु. (९।८९)

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यंत कुमार रहें, परन्तु असदृश्य अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए।

विवाह किसके अधीन होना चाहिए?

लड़का-लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। क्योंकि एक-दूसरे के प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होती हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता-पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहें तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है।

- ('सत्यार्थप्रकाश' : चतुर्थ समुल्लास)

सप्तपदी

हृदयस्पर्श
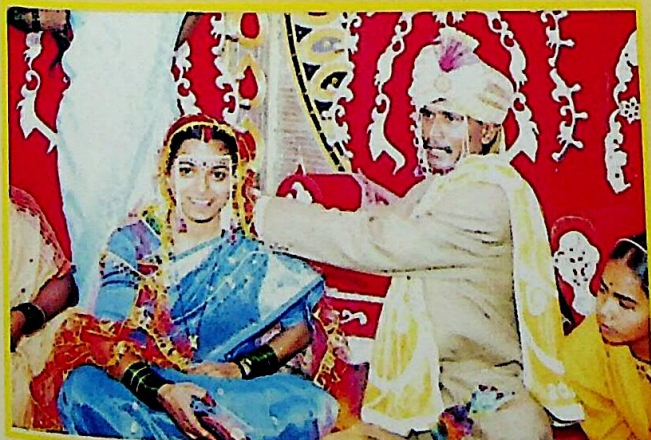
मंगळसूत्रधारण

श्री. भीमाशंकर चंदप्पा साखरे

प्रस्तुत ग्रंथ के संपादक श्री भीमाशंकर साखरे जी का जन्म दि. १९ जुलाई, १९३१ को कर्नाटक प्रांत के गुलबर्गा जिले मे आळंद गाँव के एक किसान परिवार में हुआ। बचपन से ही इन पर आर्यसमाज का प्रभाव था। केवल १८ वर्ष की आयु में वे आर्यसमाज आळंद के प्रधान बने और २० वर्ष तक उस पद पर कार्यरत रहे। उनके प्रधानपद के कार्यकाल में ही आर्यसमाज का भव्य भवन खड़ा हुआ। १९४८ के हैदराबाद मुक्ति-आंदोलन में उनका सक्रिय सहभाग था। केवल ५ वीं कक्षा तक पढ़े हुए, आज तक किसान का जीवन जी रहे श्री साखरे जी एक स्वाध्यायशील, जिज्ञासु, निष्ठावान, सज्जन और प्रसिद्धि से दूर रहनेवाले, मिलनसार व्यक्ति है। उन्होनें कर्नाटक आर्य प्रतिनिधि सभा में अलग-अलग पदों पर काम किया है। दो वर्ष पहले उनको कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा में आजीवन सदस्य नियुक्त किया गया है। अब तक उनके मराठी, हिंदी और कन्नड भाषाओं में कुल १६ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। आर्य जगत् (दिल्ली), आर्य संदेश (लखनऊ), आर्यसंसार (कलकत्ता), समभाव (नागपूर), युगमंथन (नांदेड), लातूर समाचार (लातूर) व वैदिक गर्जना(परळी) इन नियतकालिकों में उनके वैचारिक लेख प्रकाशित होते आए हैं। अलग-अलग परिषदों में उन्होंने अपने शोध-निबंध पढ़े हैं। लगभग ८० वर्ष की आयु में भी उन्होंने अपना लेखनकार्य बड़ी निष्ठा और लगन से चालू रखा है। श्री साखरे जी एक उत्तम पुरोहित हैं। वे मराठी, हिंदी और कन्नड इन तीनों भाषाओं में सभी संस्कारों का पौरोहित्य करते हैं।

सौ. कमलाबाई भीमाशंकर साखरे

शहापुर (गोगी), (जि. गुलबर्गा) के श्री परशुराम भिरजी के घर आपका जन्म हुआ। आपकी पढ़ाई चौथी तक हुई। कन्नड के साथ आप हिंदी और मराठी भी जानती हैं। पति के प्रत्येक सामाजिक कार्य में आप शुरू से ही सहयोग देते आई हैं। आप दोनों बड़े श्रद्धालु, विनयशील और सरल स्वभाव के हैं। ईश्वर आपको दीर्घायु व आरोग्य प्रदान करें यही मंगल कामना !

\- प्रकाशक

सुरभारती प्रकाशन

सीताराम नगर, लातूर